बौद्ध साहित्य में राजा की अवधारणा

Mk- vt; dqekj feJ*

,o Mk- jk[kh jkor*

राजनीति 'समाज' नामक संस्था की रीढ़ है। समाज के निर्माण के साथ ही राज्य का भी कोई न कोई स्वरूप निर्मित हो जाता है। आदि युगीन भारतीय समाज में राजनीतिक संगठन का जो स्वरूप निर्मित हुआ उसी का विकास भारतीय इतिहास में मध्यकाल तक होता गया। बौद्ध साहित्य में राजा या राष्ट्र, राजा या शासक एवं शासन व्यवस्था का जो स्वरूप दिखायी देता है वह भारतीय समाज के आद्य इतिहास में प्राप्त राज्य सम्बन्धी अवधारणा के समान है। प्राचीनतम भारतीय समाज के राजनीतिक संगठन का निरूपण हमें वैदिक एवं सैन्धव सभ्यता के अवशेषों में प्राप्त होता है। वेदों में राजा और राज्य की अवधारणा तत्कालीन समाज के अनुरूप ही दिखायी पड़ती है। उस समय समाज दो रूपों में विकसित हुआ। समाज का एक भाग बड़े नगरों में रहने लगा जो व्यापार द्वारा जीवन निर्वाह करता था और दूसरा भाग गांवों में रहता था और कृषिजीवी था जिसे सिन्धु घाटी सभ्यता कहा जाता था। पणि अथवा वणिक वर्ग अपने नगरों की व्यवस्था स्वयं करते थे और उनके निर्माण की योजना भी संगठित रूप में बनाते थे। उस समय ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रीय राज्य नहीं था। उस काल के प्रत्येक कुल अथवा गोत्र के लोग किसी भू-भाग पर अधिकार करके ग्रामों में रहकर सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे। वैदिक सभ्यता में राजा और राजा के विकास की जो रूपरेखा वैदिक मायने में देखने को मिलती है उससे ज्ञात होता है कि राजा मुख्यत: विश अथवा प्रजा की रक्षा का कार्य करता था। प्रजा से जो उसे कर प्राप्त होता था उसका अधिकांश हिस्सा वह प्रजा के हित के लिए व्यय कर देता था। उस समय राजाओं का शासन धर्म पर आधारित था। राजाओं का छोटा या बड़ा राज्य ही उसका राष्ट्र था। राज्याभिषेक के समय प्रजा के समक्ष वह प्रतिज्ञा करता था कि 'यदि मैं प्रजा द्रोह करू तो अपने जीवन, अपने पुण्य फल एवं सन्तान सबसे वंचित हो जाऊँ'।[1] अन्यत्र राज्याभिषेक के समय राजा द्वारा यह प्रतिज्ञा करते हुए पाया गया कि 'हे प्रजा! यदि मैं तुमसे विद्रोह करूँ तो अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक मैंने जितने शुभ कर्म किये हों उनसे प्राप्य स्वर्ग भोग से, अपने जीवन से और अपनी सम्पत्ति से वंचित हो जाऊँ।'[2] लेकिन बाद में महाभारत काल तक आते-आते राजा इस आदर्श से विचलित होने लगे। इसी का परिणाम रहा कि महाभारत जैसा भयंकर यु) हुआ।

राज्य और राजा के आदर्शों के ह्रास का स्वरूप बु) द्धकाल के इतिहास में भी दिखायी पड़ता है। इसीलिए तथागत को राजा के आदर्श के नये रूप की स्थापना करनी पड़ी थी। राजा के सम्बन्धा में दीर्घ निकाय में कहा गया है कि 'धम्मेन परे रञ्जेती तित खो वासेठ्ठ, राजा, राजा ति'।[3] अर्थात् राजा प्रजा का रंजन करने वाला होता था जनता के हित में कार्य करता था। राजोवाद जातक में कहा गया है कि 'यदि राजा धर्म करता है तो प्रजा भी धर्माचरण करती है। राजा के धार्मिक होने पर पूरा राष्ट्र सुख को प्राप्त करता है।'[4] इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध साहित्य में राजा एक विशिष्ट व्यक्ति था जिसका मुख्य कार्य प्रजा का रंजन करना, उसका हित सम्वर्द्धन करना तथा धार्म से शासन संचालित करना था।[5] संयुक्त निकाय में कहा गया है कि ध्वज को देखकर रथ का आना ज्ञात होता है, धूम को देखकर अग्नि का होना जान पड़ता है। उसी तरह राजा भी राष्ट्र का चिह्न होता है।[6] राजा से ही राष्ट्र की पहचान होती है। राष्ट्र सुखी एवं समृद्ध तभी हो सकता है जब राजपद का सौन्दर्य और बल राजवृद्ध राजधर्म पालन पर अवलम्बित हो।[7] राजा के सम्बन्ध में सुत्तनिपात में वर्णित है कि 'वासेठ्ठ! मनुष्यों में जो कोई ग्राम या राष्ट्र का उपयोग

* ,lksfl,V~l izksQslj izkphu bfrgkl] iqjkrÙo ,oa laLd`fr foHkkx ih-th-dkWyst vkJe cjgt] nsofj;k

करता है उसे राजा जानो न कि ब्राह्मण।[8] इससे स्पष्ट होता है कि ग्राम का संचालन करने वाला भी राजा कहा जाता था। राजा का अर्थ सम्भवत: प्रिय से ही था क्योंकि एक विष्ठिष्ट व्यक्ति ही होता था जो सम्यक आचरण द्वारा लोकरंजन करता था।[9] उसे 'देवपुत्र' तथा 'मनुजाधिपति' भी कहा गया है।

बौद्ध साहित्य में राजा के लिए विवेकी होना आवष्ठयक बताया गया क्योंकि विवेकहीन राजा विज्ञपुरुषों द्वारा अप्रष्ठांसित होता है, जनता के लिए कष्टदायक होता है एवं वष्ठुजनों द्वारा उपेक्षित होता है।[10] बौद्ध साहित्य में कहा गया कि राजा कामी न हो अपितु वह ष्ठुद्धकर्मा जितेन्द्रिय हो,[11] सत्यवादी और धर्म पर चलने वाला हो।[12] राजा में बुद्धिबल,[13] उत्साह[14] तथा बल पराक्रम[15] होना आवष्ठयक माना गया। राजा के ष्ठिल्पी होने का प्रमाण भी घट जातक मिलता है।[16] वह विज्ञान, कला आदि विषयों का ज्ञाता होता था।[17] उसके अन्दर उदारता एवं सद्व्यवहार की भावना रहती थी। कुम्भ जातक में भी राजा के मद्यपान के दुर्गुणों का वर्णन किया गया है।[18] इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध काल में राजा के लिए मद्यपान वर्जित था।

राजा बनने से पूर्व राजकुमारों की ष्ठिक्षा-दीक्षा का विष्ठोष महत्त्व था। राजा अपने पुत्रों को प्रसिद्ध आचार्यों के निर्देष्ठान में रहते हुए ष्ठिल्प सीखने के लिए दूर देष्ठों में भेजता था। ताकि उनका मानमर्दन हो जाय, सर्दी-गर्मी में रहने का सामर्थ्य आ जाय और वे लोक व्यवहार से परिचित हो जायँ। तिलमुठ्ठि जातक में राजा ने अपने 16 वर्ष के पुत्र को बुलाकर उसे एक तल्ले का जूता, पत्तों का छाता और एक हजार का कार्षापण देकर यह कहकर तक्षष्ठिला भेजा कि तात! तक्षष्ठिला जाकर विद्या सीखो। पुत्र ने 'अच्छा कहकर माता-पिता को प्रणाम किया और ष्ठिक्षा प्राप्ति हेतु विदा ली।[19] इससे ज्ञात होता है कि अध्ययन काल में राजकुमारों का पूरा जीवन सात्विक, ब्रह्मचर्य एवं अन्य छात्रों के समान ही होता था। वे अस्त्र-ष्ठास्त्र चलाने की ष्ठिक्षा गुरुकुल में ही लेते थे। सीलवकुमार ने 16 वर्ष की आयु में ही सभी ष्ठिल्पों में प्रवीणता प्राप्त कर ली।[20] इससे स्पष्ट होता है कि 16 वर्ष की अवस्था तक राजकुमार ष्ठिक्षा प्राप्त कर लेते थे। उस समय तक तक्षष्ठिला राजकुमारों की ष्ठिक्षा हेतु मुख्य केन्द्र बन गया था जहाँ इन्हें धनुर्विद्या, हस्त विद्या तथा ष्ठिल्प आदि प्रमुख विद्याएँ सिखायी जाती हैं। महावस्तु में राजकुमारों की ष्ठिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विद्याओं का उल्लेख है।'[21] विद्याध्ययन का उद्देष्ठय राजकुमारों को योग्य बनाना था जिससे वे ष्ठासन का कार्य सुचारू रूप से चला सकें। जब राजा वष्ठुद्ध हो जाता था तब उसके ज्येष्ठ पुत्र को सिंहासन का उत्तराधिकारी मानते हुए उसका राज्याभिषेक किया जाता था।

मखादेव जातक में मखादेव नामक राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर कहा कि तात! मेरे सिर में सफेद बाल उग आये हैं, मैं बूढ़ा हो गया हूँ तु इस राज्य को संभाल।[22] इससे स्पष्ट होता है कि प्राय: ज्येष्ठ पुत्र ही राजा का उत्तराधिकारी होता था लेकिन कभी-कभी अपवाद स्वरूप दूसरे पुत्र भी उत्तराधिकारी हो जाते थे। जैसे देवधम्म जातक में वर्णित है कि राजा अपनी रानी को पूर्व प्रदत्त वर्ग के अनुसार सबसे छोटे पुत्र सूर्य कुमार को गद्दी देने के लिए राजी हो गये। जबकि अपने दो पुत्रों को उनकी सुरक्षा के लिए वन में भेज दिये।[23] जयद्दिष्ठा जातक में वर्णित है कि राजा ने अपने पुत्र अलीनष्ठात्रु को बुलाकर कहा 'कि आज ही राज्याभिषिक्त हो सभी नगरों में धर्माचरण करो, राष्ट्र में अधम्मचारी प्रसिद्ध न हो।[24] इससे संकेत मिलता है कि राजा अपने पुत्र को अनुष्ठासित करता है। राजा के मष्ठ होने पर अमात्यों और पुरोहितों द्वारा युवराज का राज्याभिषेक किया जाता था।[25] राज्याभिषेक बड़ी तैयारी के साथ होता था। वास्तव में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में राजा का निर्णय महत्त्वपूर्ण था। देवाधिष्ठान में राजकुमार को पवित्र जल से स्नान कराकर राज्याभिषेक कराया जाता था।[26] राज्याभिषेक राजा के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना होती थी। तथागत ने राज्याभिषिक्त क्षत्रिय राजा के सम्बन्ध में भिक्षुओं से कहा कि राज्याभिषिक्त क्षत्रिय

जन्म ग्रहण के स्थान को, राज्याभिषेक किये गये स्थान को एवं विजय किये गये स्थान को कभी नहीं भूलता।[27] इससे स्पष्ट है कि क्षत्रिय राजा का राज्याभिषेक होता था। भगवान् बुद्ध एवं अम्बठ्ठ माणवक की वार्ता से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय कुमार का अभिषेक होता था जिसके लिए रक्त ष्शुद्धता को भी महत्त्व दिया जाता था।[28] बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा कि भिक्षुओं! मुकुटधारी क्षत्रिय राजा का ज्येष्ठ पुत्र माता और पिता दोनों की ओर से सुजात होता है। सात पीढ़ी तक ष्शुद्ध वंष्ठा वाला, जातिवाद की दृष्टि से निर्दोष सुन्दर, दर्ष्ठानीय, प्रिय लगने वाला, श्रेष्ठ वर्ण से युक्त तथा माता-पिता का प्रिय लगने वाला होता है। इससे स्पष्ट होता है कि राज्याभिषेक के लिए राजकुमार की विष्ठिाष्टता आवष्ठयक थी। उसे सेना का प्रिय मेध ावी एवं सम्यक विचार से युक्त[29] होने पर ही राज्य की कामना करनी चाहिए।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में प्रजा की सेवा ही राजा का मुख्य कर्त्तव्य था। राजा का धार्मिक होना एवं धर्म के माध्यम से प्रजा की रक्षा करना राजा की प्राथमिकता थी। भिक्षुओं को उपदेष्ठा देते हुए बुद्ध ने कहा है कि 'राजा धर्म के लिए धर्म का सत्कार करते हुए धर्म के प्रति गौरव प्रदर्ष्ठित करे, जनता को धार्मिक सुरक्षा प्रदान करे, धर्मध्वज, धर्म के धर्माधिपति, क्षत्रियों की, सेना की, ब्राह्मणों, गष्ठपतियों, निगम जनपद के लोगों तथा पष्ठु पक्षियों की सुरक्षा की व्यवस्था करे।[30] इससे स्पष्ट होता है कि राजा प्रजा का रक्षक था और उसके रक्षा का आधार धर्म था क्योंकि अंगुत्तर निकाय में धर्म को ही राजा बताया गया।[31] टेसकुण जातक में राजधर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि राजा असत्य व क्रोध का त्याग करे। जिस कर्म को करने से उसे अनुताप हुआ हो उस कर्म को राग अथवा द्वेष के वष्ठीभूत होकर पुनः न करे। वह प्रमादी, ईर्ष्यावान तथा दुष्ट हृदय न हो, दूषित कर्मों का परित्याग करे, दरिद्रता के नाष्ठाक ष्शुभ कर्मों को करे।[32] वह अमात्यों की नियुक्ति परीक्षा द्वारा करे जो जुआरी, ष्शराबी न हो बल्कि धीरवान हो। राजा दण्डनीय को दण्ड दे और आदरणीय का आदर करे। ष्शीघ्रता से कोई कार्य न करे और न ही कोई दूसरे से करावे। वह स्वयं को सबका स्वामी समझ लोगों का अनर्थ न करे और न ही निरंकुष्श होकर कार्य करे। वह पुण्य कर्म करे, सुरापान का त्याग करे और सदाचारी बने।[33] धर्माचरण राजा के लिए सुखदायक होता है, वह धर्म से प्रमाद न करे, राजा का यही कर्तव्य है, यही अनुष्शासन है। वह पाँच बलों-कायबल, भोग्य बल, अमात्य बल, अभिजात्य कुल में जन्म बल एवं प्रज्ञा बल का ज्ञाता बने।[34] इससे स्पष्ट है कि राजा जनता का सेवक था, राजधर्म का पालन करना उसका मुख्य कर्तव्य था। दान देना भी उसका मुख्य कर्त्तव्य बताया गया।[35] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और मद्यपान का त्याग करना, राजा का कर्तव्य था।[36] राजा अपनी बुराइयों को दूर करने के लिए आलोचकों को ढूँढ़ा करते थे और अपनी कमियों का निराकरण करते थे।[37] यदि राजा अधार्मिक हो जाता था तो पूरी प्रजा दुःख को प्राप्त करती थी। राजा मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाता है इसलिए यदि वह अधर्म करता है कि ष्शेष प्रजा पहले ही अधर्म का आचरण ष्शुरू कर देती है।[38] अर्थात् राजा के अधार्मिक होने पर राज्य का कल्याण नहीं होता। उसे बिना विचारे कोई कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि विचारपूर्वक कार्य करने वाले राजा की कीर्ति बढ़ती है।[39] राजा अपने चौथेपन में अपने पुत्रों को राज्य देकर गष्ठस्थ आश्रम का परित्याग कर संन्यास ग्रहण करते थे।[40] मिलिन्द पन्हों में राजा के कर्तव्यों को स्पष्ट करते हुए मिलिन्द ने कहा है कि जो राजपाट चलाये और सर्वत्र अपना राज्य बनाये रखे वही राजा है। वह अत्यन्त बल सम्पन्न हो जिससे अपने निर्मल ष्शवेत छत्र को ऊँचा उठाये रखे। न्याय के विरुद्ध आचरण करने वाले को दण्ड दे। धर्मपूर्वक ष्शासन करके वह लोगों का अत्यन्त प्रिय बन जाये तथा धर्मबल से अपने वंष्ठा को चिरकाल के लिए गद्दी पर बनाये रख सकता है।[41] राजा का कर्तव्य जनता का हित करने, राज्य को

अक्षुण्ण बनाये रखने, अत्याचारियों को दण्ड देने, नियमों पर चलने तथा धर्मपूर्वक ष्ठासन करने में निहित है।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय चक्रवर्ती राजा भी हुआ करते थे। इस विचार का मूलाधार भी सीमाजन्य है। पहले तो चक्रवर्ती राज्य की व्याख्या आ-समुद्र कहकर की जाती थी किन्तु नयी व्याख्या में यह कहा जाने लगा है कि कष्ठमीर से कन्याकुमारी तक चक्रवर्ती राज्य है। भगवान् बुद्ध ने अपने साम्राज्य का नामकरण भी 'धर्म-चक्र' किया था वह सम्भवत: राजनीतिक भाषा के अनुसार था।[42] बौद्ध साहित्य में चक्रवर्ती राजा के गुण, कर्तव्य एवं अधिकार सामान्य राजाओं से भिन्न बताये गये। इनकी कुछ विष्ठोष महत्त्वाकांक्षाएँ होती थीं जिसके अन्तर्गत राज्य की परिधि का विस्तार करके पूरे राज्य को राजनीतिक एवं धार्मिक एकता के सूत्र में बाँधने का विचार निहित होता था।

चक्रवर्ती राजा के लिए सात रत्नों और चार ऋद्धियों से युक्त होना आवष्ठयक था क्योंकि इसी से उनको सुख और सौमनस्य प्राप्त होता था। स्वयं बुद्ध ने चक्रवर्ती राजा के सम्बन्ध में कहा है कि वह चक्ररत्न लेकर अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ पूर्व दिष्ठा की तरफ चलता है, दक्षिण पष्ठिचम तथा उत्तर दिष्ठा की ओर चलता है और उन दिष्ठाओं के राजाओं को अधीन करके उनका अनुष्ठासन करते हुए कहता है कि प्राण नहीं मारना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए, ष्ठराब नहीं पीना चाहिए और व्यभिचार नहीं करना चाहिए। इस प्रकार पूरी पष्ठथ्वी को जीतकर चक्रवर्ती राजा वापस आता है और चक्र रत्न प्रकट होता है।[43] ष्चक्रवर्ती राजा के पास सात रत्न होने चाहिए जिससे उसका ष्ठासन न्यायपूर्ण एवं धार्मिक होता था।[44] चक्रवर्ती राजा के चार ऋद्धियों से युक्त होने का तात्पर्य है कि वह अभिरूप दर्ष्ठनीय अन्य मनुष्यों से अति दीर्घायु नीरोग, ब्राह्मण गष्ठपतियों में प्रिय होता था। ऋद्धियों से युक्त राजा सुख और सौमनस्य का अनुभव करता है। राजा लोकहित के लिए होता है, वह जनों का अर्थसाधक तथा देवताओं तथा मनुष्यों के सुख के लिए अपना जीवन अर्पित करता है; उसकी मष्ठथु लोगों के अनुताप का कारण होती है और उसके स्तूप पूज्य होते हैं।[45] इससे स्पष्ट होता है कि राजा का कर्तव्य बौद्ध काल में बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय का था।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. ष्ठातपथ ब्राह्मण 5/4/4/7
2. ऐतरेय ब्राह्मण 8/3/15
3. दीघ निकाय 4, 3, 22 पष्ठष्ठ 73
4. राजोवाद जातक 334-सव्वं रठ्ठं सुखं सेति राजा चे होति धम्मिको।
5. दिव्यावदान 329/12-13 भाषणेन च पर्षदं रञ्जयति धर्मेण ष्ठीलव्रतसमाचारेण सम्यक तस्य राजा इति संज्ञाभूत।
6. संयुक्त निकाय भाग-1 पष्ठष्ठ 47

7. सौन्दरनन्द 11/45
8. सुत्तनिपात, पृष्ठ 135/26
9. दिव्यावदान पृष्ठ 329/12
10. जातक भाग-5 पृष्ठ 39 (सोमनस्स जातक 505) जातक भाग-3 पृष्ठ 317
11. बुद्ध चरित्र 2/1, 2/2
12. जातक भाग-3 पृष्ठ 236
13. महावस्तु, भाग-2, 76/14
14. वही, 75/4 जातक भाग-1 पृष्ठ 401
15. महावस्तु भाग-3, 74/10 जातक, भाग-1, पृष्ठ 402
16. घट जातक 355, जातक भाग 3, पृष्ठ 330
17. जातक भाग-2, तिलमुठ्ठ जातक 252
18. जातक भाग-5, पृष्ठ 98 से 109 (कुम्भक जातक 512)
19. जातक भाग-3, पृष्ठ 7 तिलमुठ्ठ जातक 352
20. जातक भाग-1 पृष्ठ 387 (महाष्ठीलवजातक 51) जातक भाग-5 पृष्ठ 242
21. महावस्तु भाग-2, 423/14-19
22. जातक भाग-1, पृष्ठ 226 (मखादेवजातक 9) जातक भाग-4, पृष्ठ 396
23. जातक भाग-1, पृष्ठ 212 (देवधम्म जातक 6) जातक भाग-4, पृष्ठ 325
24. जातक भाग-5, पृष्ठ 114 (जयदीस्स जातक 513)
25. जातक भाग-4, पृष्ठ 396 (कामजातक 467)
26. दिव्यावदान 131/1, महावस्तु भाग-3 3 103/16
27. अंगुत्तर निकाय भाग-1, पृष्ठ 109
28. दीघ निकाय 1/1 (अम्बठ्ठसुत्त)
29. अंगुत्तर निकाय भाग-2, पृष्ठ 361
30. अंगुत्तर निकाय भाग-1, पृष्ठ 112
31. अंगुत्तर निकाय भाग-1, पृष्ठ 112
32. जातक भाग-5, पृष्ठ 199 (टेसकुण जातक 521)
33. जातक भाग-5, पृष्ठ 201-202 (टेसकुणजातक 521)
34. जातक भाग-5, पृष्ठ 204-205
35. जातक भाग-1, पृष्ठ 3-7 (महाष्ठीलवजातक 51)
36. जातक भाग-3, पृष्ठ 90 (कुरधम्मजातक 276)
37. जातक भाग-2 (राजोवाद जातक 151)
38. जातक भाग-3, पृष्ठ 277 (जम्बूकजातक 334)
39. जातक भाग-3, पृष्ठ 317 (मणिकुण्डलजातक 351)
40. जातक भाग-1, पृष्ठ 227 (मखादेवजातक 9)
41. मिलिन्द प्रष्ठन 4/5/49, पृष्ठ 275-76

42. काष्ठीप्रसाद जायसवाल, हिन्दुराजतन्त्र, पष्ठ 293
43. मज्झिम निकाय पष्ठ 538, मिलिन्द प्रष्ठन पष्ठ 137, दीघ निकाय 3 पष्ठ 48
44. मैत्रेयावदान, अष्ठोककरणावदान पष्ठ 87, मिलिन्द प्रष्ठन 148, पष्ठ 402 दीघ निकाय पथिकबग्गो 3
45. अंगुत्तर निकाय भाग-1 पष्ठ 78-79 दीघ निकाय 3 पष्ठ 58

डॉ. अजय कुमार मिश्र
एसोसिएट्स प्रोफेसर प्राचीन इतिहास,
पुरातत्त्व एवं संस्कष्ति विभाग
पी.जी.कॉलेज आश्रम बरहज
(देवरिया)
एवं डॉ. राखी रावत

गुरम पोखराः एक ऐतिहासिक विवेचन

'kkfyuh pk/kjh*

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों के निर्माण में सांस्कृतिक धरोहरों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे भारतवर्ष में अनेक सांस्कृतिक विरासत हमारी उपेक्षा एवं सरकार की निष्क्रियता के कारण प्रकाश में नहीं आ पाते हैं। तराई के विस्तृत क्षेत्र में गोरखपुर जनपद में जिला मुख्यालय से लगभग 30 किलोमीटर दूर सोनौली मार्ग पर स्थित पीपीगंज स्टेशन से पश्चिम 6 किलोमीटर दूर ग्रामीण अंचल में स्थित 'गुरम पोखरा' अतीत को संजोये हुए एक महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्थल है।

यह पुरातात्त्विक स्थल अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण पुरातत्त्ववेत्ताओं एवं जिज्ञासुओं को आकर्षित करता रहा है। इस पुरास्थल की विशिष्ट बात यह है कि यहाँ हिन्दू, मुस्लिम व बौद्ध तीनों धर्मों की आस्था एकरूप होती दिखाई देती है। इस पुरास्थल पर असामान्य ऊँचाई के प्राकृतिक भीटे (टीला) और 15 एकड़ क्षेत्रफल में विस्तृत एक पोखरा है। इसी पोखरे को 'गुरम पोखरा' के नाम से जाना जाता है। इस पुरास्थल का विस्तार क्षेत्र 33 एकड़ क्षेत्र में है। इसीलिए यह क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत होने के कारण दो ग्राम सभाओं राखूखोर एवं पचगाँवा के मध्य स्थित है। इस पुरास्थल पर मध्य में स्थित पोखरे के चतुर्दिक 10 फुट ऊँचा टीला स्थित है। इस चतुर्दिक भीटे को देखने से यह आभास होता है कि प्राचीन काल में सरोवर का पर्याप्त महत्त्व रहा होगा। इस टीले के भीतर पूर्वी छोर पर एक स्तूपाकार संरचना (30) है, जिसके ऊपर वर्तमान समय में 'माता समय' का प्राचीन मन्दिर है। यहाँ नित्य पूजा-पाठ एवं कड़ाही चढ़ाने के लिए श्रद्धालुगण दूर-दूर से आते रहते हैं। श्रद्धालुओं की धारणा है कि माता भगवती का नाम स्मरण कर सात बार स्नान (सरोवर में) करने से त्वचा रोग से मुक्ति मिल जाती है। जिस टीले पर माता समय का स्थान है, वह चतुर्दिक वटवृक्ष की गोद में स्थित है। जिसका मुख्य तना ढूँढ़ना मुश्किल है। वटवृक्ष की शाखाओं से लटकती लताएँ ही जमीन का स्पर्श पाकर कालान्तर में तना के रूप में विकसित हो गयी हैं और इसी प्रकार लता से रूपान्तरित ये तने क्रमशः सड़ते जाते हैं और नयी लताएँ तना का रूप धारण करती जाती हैं। यह क्रम सैकड़ों वर्षों से निरंतर चला आ रहा प्रतीत हो रहा है। मन्दिर तक पहुँचने के लिए 21 सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। मन्दिर के वास्तु-विन्यास को देखने से यह आभास होता है कि पकी ईटों से निर्मित किसी स्मारक के खण्डहरोपरान्त टूटी-फूटी ईटों का दोबारा (पुनः) प्रयोग करके आधुनिक समय में इसे यह आकार दिया गया है। ऊपर से ईटों का कोई स्पष्ट आकार नहीं दिखता, परन्तु धरातल पर बिखरे यत्र-तत्र कुछ ईटें मिलती हैं, जिनके आधार पर इसे पूर्व-मध्यकालीन माना जा सकता है।

ग्रामवासियों के अनुसार लगभग 5 दशक पूर्व तक यह स्थल सिंहोर वृक्षों का एक जंगल था। इस स्थल के सम्बन्ध में पं. श्रीनारायण शास्त्री जी का कथन है कि श्रीमद्भागवत में इस बात का उल्लेख है कि पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास के दौरान सिंहोर वृक्षों के वन में भी कुछ दिन व्यतीत किया था। वर्तमान का गुरम पोखरा वही पोखरा है, जहाँ यक्ष देवता ने पाण्डवों से प्रश्न पूछा था। स्थानीय लोगों द्वारा इस स्थल के विषय में एक किंवदन्ती यह भी प्रचलित है कि सैकड़ों वर्ष पूर्व एक बार इस क्षेत्र में आकाश मार्ग से उतरकर राक्षसों ने उत्पात मचाना शुरू कर दिया। उन्हीं में से कुछ राक्षसों ने पोखरे वाले स्थान पर अपने नाखूनों से जमीन को कुरेद-कुरेद कर गड्ढा बना डाला जो वर्तमान में पोखरे के रूप में मौजूद

* iloDrk&ikphu bfrgkl foHkkx] egkjk.kk iirki egkfo|ky;] txy /kIM] xkj[kij

है। राक्षसों के अत्याचार से पीड़ित ग्रामवासियों ने निजात पाने के लिए यज्ञ करना ष्शुरू कर दिया। यज्ञोपरान्त माँ दुर्गा ने स्वयं प्रकट हो ग्रामीणों को राक्षसों के अत्याचार से मुक्त कराया। टीले पर वर्तमान में माता समय आज भी माँ दुर्गा के (मूर्तिरूप) रूप में प्रतिष्ठित हैं। ग्रामवासी बताते हैं कि टीले पर तपस्वी साधुओं की साधना करने की प्राचीन परम्परा है। वर्तमान में उत्तरी दिष्ठा की ओर टीले पर एक भग्नावष्ठोष कुटिया एवं एक कुआँ आज भी इस बात को पुष्टि प्रदान कर रहे हैं। दक्षिण दिष्ठा की ओर पोखरे के सन्निकट एक कुआँ, 2012, माह जनवरी में मनरेगा मजदूरों द्वारा सड़क को चौड़ा करने के लिए पोखरे से मिट्टी खुदाई के दौरान प्रकाष्ठा में आया। यह कुआँ ऊपर से पूरी तरह अभ्रक से ढका हुआ था। निरन्तर खुदाई करने के बाद बहुत ही सँकरा, पतली ईटों से निर्मित यह कुआँ बर्तनों (जैसे-बाल्टी का हैण्डिल, कड़ाही का चूल्ला) से भरा था। ग्रामीण बताते हैं कि थारू संस्कष्ति के लोगों द्वारा यहाँ पर कुएँ का निर्माण किया गया था। धन को सुरक्षित रखने के उद्देष्ठय से इन कुओं का निर्माण किया गया होगा। इस स्थल पर वर्तमान में दो कुएँ मौजूद हैं। स्थानीय नागरिकों के अनुसार यहाँ 7 कुएँ हैं, परन्तु इस स्थल की खुदाई के उपरान्त ही यह साक्ष्य प्रकाष्ठा में आ सकेगा।

हिन्दुओं के अतिरिक्त यह क्षेत्र मुसलमान समुदाय के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। पोखरे के दक्षिण-पष्ठिचम सिरे पर मुस्लिम समुदाय का एक ईदगाह भी स्थित है, जहाँ ईद आदि विष्ठोष अवसरों पर नमाज अदा की जाती है। यही नहीं यह क्षेत्र हिन्दू, मुस्लिम सहित बौद्ध धर्मावलम्बियों की आस्था का केन्द्र हो सकता है। इतिहासवेत्ता इस इलाके में ही अंगार स्तूप होने की सम्भावना व्यक्त करते हैं। बौद्ध काल में इस क्षेत्र में पिप्पलीवन के मोरियों का साम्राज्य था। वास्तव में पिप्पलीवन के मोरियों को भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण की सूचना काफी विलम्ब से मिली थी। उनके कुष्ठीनारा पहुँचने से पूर्व ही अस्थियों का विभाजन हो चुका था, और उन्हें ष्ठावदाह स्थल की राख लेकर ही संतोष करना पड़ा था। मोरियों द्वारा निर्मित वह अंगार स्तूप कहीं पूर्वांचल के इसी क्षेत्र में होना चाहिए। महापरिनिर्वाण सुत्त में एक ऐसा स्तूप बनाये जाने का सन्दर्भ है, जो अंगार स्तूप कहा जाता था। अतः कहीं रखुआखोर/राखूखोर ग्राम का टीला वही (उक्त स्तूप) अंगार स्तूप ही तो नहीं है। यदि राखूखोर की इस संरचना का अतीत से थोड़ा भी सम्बन्ध है तो इसका स्तूप होना निष्ठिचत है, क्योंकि ऊँचाई को दष्टिगत रखते हुए किसी अन्य स्मारक की कल्पना निरर्थक है। इसके आस-पास प्राचीन सन्निवेष्ठा का कोई साक्ष्य नहीं मिलता। जबकि कुष्ठीनगर एवं महाराजगंज के जनपदों के सर्वेक्षण तथा उत्खनन के साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि सुमही बुजुर्ग तथा कन्हैया बाबा के स्थान पर दष्टिगत स्तूपों के भग्नावष्ठोषों के ऊपर आधुनिक काल में हिन्दू देव स्थान बनाने का प्रमाण सामने आया है। दोनों ही तथ्यों पर यदि ध्यान दें तो यह निष्कर्ष निकल कर आता है कि राखूखोर में स्थित टीला भी प्रारम्भ में स्तूप रहा होगा, जिसके भग्नावष्ठोषों के ऊपर आधुनिक काल में हिन्दू देव स्थान निर्मित किया गया है। इस पुरास्थल पर गहन सर्वेक्षण एवं उत्खननोपरान्त ही यह पुष्टि हो सकेगी कि यह बौद्ध कालीन स्थल है या नहीं। इस बात की पुष्टि हो जाती है तो फिर यह एक युगान्तकारी घटना होगी और मोरिय गणराज्य का निष्ठाान खोजना सरल हो जायेगा। इस क्षेत्र की एक स्वयंसेवी संस्था विद्यार्थी कल्याण एवं सेवा संस्थान बौद्ध परिपथ में अवस्थित इस ऐतिहासिक स्थान को उसका अपेक्षित महत्त्व दिलाने के लिए प्रयासरत है। गुरम पोखरा से 1किमी. दूर उत्तर दिष्ठा की ओर गुरम गाँव स्थित है। वहाँ एक खेत से बुद्ध की अति प्राचीन मूर्ति सेवा संस्थान को प्राप्त हुई है। इस सेवा संस्थान के स्वयंसेवकों का मानना है कि गुरम पोखरा में स्थित टीला (स्तूप) पिप्पलीवन के मोरियों द्वारा निर्मित न होकर कपिलवस्तु के ष्ठाक्यों द्वारा निर्मित है। रोहिणी नदी के पष्ठिचम व उत्तर दिष्ठा में

कपिलवस्तु के ष्ठाक्यों का ष्ठासन था तथा रोहिणी के दूसरी तरफ रामग्राम के कोलियों का ष्ठासन था। इसी रामग्राम को आज रामगढ़ताल कहा जाता है। गुरमपोखरा रोहिणी नदी से लगभग 15किमी. उत्तर में स्थित है। अत: टीले पर स्तूप का निर्माण ष्ठाक्यों द्वारा कराया गया होगा।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि 30 फुट ऊँचा टीला बौद्ध काल से संबधित है। इसके संबंध में कुछ प्रमुख तथ्यों पर दष्टिपात करना आवष्ठयक हो जाता है। जैसे- बौद्ध ध र्म से इसका सम्बन्ध- महापरिनिर्वाणसुत्र में कहा गया है कि आनंद ने बुद्ध से उनके महापरिनिर्वाण के पूर्व पूछा था कि-उनकी मष्ठयु पर उनके अवष्ठोषों पर किस प्रकार का स्मारक बनाया जाय। इस पर बुद्ध ने कहा था कि मेरे ष्ठारीर-धातु पर चातुमहापदे (चौराहे) पर उसी प्रकार स्तूप बनाया जाय जिस प्रकार राजाओं के फूले पर बनाया जाता है। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके फूले के लिए आठ दावेदार उठ खड़े हुए थे। फूला बाँटने के पहले द्रोण ने इसे अपने पास सुरक्षित रखा था। आठ दावेदारों के बीच अस्थियाँ बाँटी गयी जिन्होंने अपने-अपने ष्ठासन केन्द्रों में फूलों पर स्तूप बनवाया। जिस कलष्ठा में अस्थियाँ रखी थी। उस कलष्ठा पर द्रोण ने एक स्तूप बनवाया था तथा पिप्पलीवन के मोरिस जो बँटवारे से बाहर रह गये थे उन्होंने फूले के अभाव में बुद्ध के चिता के ष्ठमष्ठान के कोयले पर ही स्तूप बनवाया। इस प्रकार बुद्ध के महापरिनिर्वाण पर कुल 10 स्तूप बने थे। वर्तमान में यह स्तूप कहाँ स्थित है? यह ज्ञात नहीं है। संभवत: पिप्पलीवन के मोरियों द्वारा जिस स्तूप का निर्माण, (महापरिनिर्वाण सुत्त में उल्लिखित 10वें स्तूप के रूप में) कराया गया था कही राखूखोर ग्राम का टीला वही अंगार स्तूप ही तो नहीं है।

बौद्ध स्तूप की परंपरा में स्तूप का एक प्रमुख अंग प्रदिक्षणापथ होता है, जो स्तूप के चतुर्दिक निर्मित किया जाता है। गुरम पोखरा में स्थित टीले के चतुर्दिक प्रदिक्षणापथ वर्तमान में भी मौजूद है। जिसके माध्यम से श्रद्धालुगण उस टीले की परिक्रमा करते है। पिपरहववा के स्तूप की भाँति इस पुरास्थल पर भी चतुर्दिक टीलों के मध्य एक मुख्य टीला (स्तूप) आज भी विद्यमान है। पिपरहवा में मुख्य टीले के चतुर्दिक भीटें की खुदाई से बौद्ध विहार के साक्ष्य प्राप्त हुए है। पिपरहवा के ऐसे भग्नावष्ठोष जो प्राप्त हुए है उनकी वास्तुयोजना जिस स्वरूप पर निर्मित की गयी थी, उसी तरह की वास्तुयोजना गुरमपोखरा पुरास्थल पर खुदाई के उपरांत संभवत: प्रकाष्ठा में आ सकते है। इस पुरास्थल को बौद्ध परंपरा से जोड़ने की एक प्रमुख कड़ी गुरम गाँव से प्राप्त बुद्ध की प्रतिमा थी है।

ये सभी साक्ष्य इस क्षेत्र के प्रति व्यक्त संभवनाएँ है। भविष्य में खुदाई के उपरांत अनेक रहस्य उद्घाटित होगें। यही नहीं अन्य तथ्यों के प्रकाष्ठा में आने पर यह एक युगांतकारी घटना होगी। बौद्ध ध र्म से जुड़े महत्त्वपूर्ण स्थानों की कड़ी में एक और कड़ी इस पुरास्थल के रूप में जुड़ सकेगी।

सन्दर्भ

1. विद्यार्थी कल्याण एवं सेवा संस्थान (फरदहनी गोरखपुर, उ.प्र. सरकार द्वारा पंजीकष्ठ)
2. भारतीय वास्तुकला-ष्ठिवस्वरूप सहाय, पष्ट-50, अ. 6 प्रकाष्ठाक- स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स 6, विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद, संस्करण (2010-11)
3. भारतीय कला- वासुदेवष्ठारण अग्रवाल, अ. 8, पष्ठ 135-136 प्रकाष्ठाक- देवकुमार अग्रवाल (पष्ठिवी प्रकाष्ठान बी.1/54 अमेठी कोठी, नगवा, वाराणसी)

गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) : एक परिचय

l|Hkk"k d|ekj x|Irk*

भारत में गैर-सरकारी संगठन का अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यताओं का इतिहास। गैर-सरकारी संगठन ने हमेष्ठाा ष्ठिाक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करने के काम में राज्य संगठनों के साथ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उस समय इन संगठनों का बुनियादी काम सुरक्षा प्रदान करना होता है। लेकिन एनजीओ का सुसंगठित रूप तब अस्तित्व में आया जब 1860 में सोसाइटीज रजिस्ट्रेष्ठान एक्ट बनाया गया, जो एक केन्द्रीय अधिनियम के तहत पंजीकृत है, अधिनियम की धारा 20 के अनुसार सोसाइटी पंजीकृत किया जा सकता है।

एनजीओ का अर्थ होता है गैर-सरकारी संगठन। विष्ठवबैंक के अनुसार- 'एनजीओ एक निजी संगठन होता है, जो लोगों का दु:ख-दर्द दूर करने, निर्धनों के हितों का सवर्द्धन करने, पर्यावरण की रक्षा करने, बुनियादी सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने अथवा सामुदायिक विकास के लिए गतिविधियाँ चलाते हैं।

भारत ही विष्ठव का एक ऐसा देष्ठा है जहाँ गैर-सरकारी संगठन लाभ के लिए काम नहीं करने वाले सक्रिय संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 1970 तक देष्ठा में केवल 1.44 लाख समितियाँ पंजीकृत थीं। पंजीकरण की संख्या में अधिकतम वृद्धि वर्ष 2000 के बाद हुई। सरकार द्वारा हाल में ही कराये गये एक अध्ययन के अनुसार भारत में 2009 के अन्त तक लगभग 30 लाख 30 हजार एनजीओ थे।

सरकारी आँकड़ों के अनुसार सबसे अधिक स्वैच्छिक संगठन महाराष्ट्र में पंजीकृत हैं। उसके बाद आन्ध्र प्रदेष्ठा और उत्तर प्रदेष्ठा का स्थान आता है।

भारत में स्वैच्छिक संगठनों की संख्या निम्नानुसार है:

1. महाराष्ट्र (4.8 लाख) 2. आन्ध्र प्रदेष्ठा (4.6 लाख)
3. उत्तर प्रदेष्ठा (4.3 लाख) 4. केरल (3.3 लाख)
5. कर्नाटक (1.9 लाख) 6. गुजरात (1.7 लाख)
7. प. बंगाल (1.7 लाख) 8. तमिलनाडु (1.4 लाख)
9. ओड़िसा (1.3 लाख) 10. राजस्थान (1 लाख)

इन आँकड़ों से पता चलता है कि केवल 10 राज्यों में ही 80 प्रतिष्ठात से अधिक संगठनों का पंजीकरण हुआ है। स्वैच्छिक संगठनों के अनेक लाभ हैं। भारत एक विष्ठाल देष्ठा हैं और इसकी जनसंख्या भी काफी अधिक है। ऐसे में सरकार के लिए सभी गतिविधियों की देखभाल करना व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं है। अत: देष्ठा की सभी ष्ठोष गतिविधियों की देखभाल के लिए स्वैच्छिक संगठनों की सहायता की आवष्ठयकता है।

स्वैच्छिक संगठन बाढ़, सूखा, भूकम्प और महामारी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के बाद राहत और पुनर्वास के कार्य में अग्रणी भूमिका निभाते हैं। इस सन्दर्भ में सरकार भी उनकी भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानती है।

गैर-सरकारी संगठन की विभिन्न क्षेत्रों में भूमिका इस प्रकार है

1. आपदा नियंत्रण में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका-

* i|oDrk&okf.kT; foHkkx] egkjk.kk i|rki egkfo|ky;] t|xy /k|I M] xkj[ki|j

न्यूनीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। गैर सरकारी संगठन सरकार और प्रभावित समुदाय के बीच संचार के प्रभावी साधन बन कर उभरे हैं, जो बुनियादी स्तर पर प्रभावित समुदाय के बीच कार्य कर रहे हैं। गैर सरकारी संगठनो ने बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में आजीविका समुत्थान एवं जनक्षमता विकास करके बाढ़ आपदा न्यूनीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया हैं।

गैर सरकारी संगठन बाढ़ आपदा प्रभावित क्षेत्र के विभिन्न विकास खण्डों का चयन कर ग्राम-पंचायत स्तर पर, विशेषकर लघु एवं सीमान्त कृषक, दलित एवं अल्पसंख्यक तथा कम आय वर्ग के लोगों का चयन कर उनके आजीविका संवर्द्धन का प्रयास कर रहे हैं ताकि उनमें आपदा को सहन करने की क्षमता विकसित हो सके।

गैर सरकारी संगठन बाढ़ आपदा प्रभावित क्षेत्र में बाढ़ न्यूनीकरण हेतु निम्न कार्यों का संचालन कर रहे हैं:

* आजीविका संवर्द्धन एवं सशक्तीकरण
* किसान विद्यालय का संचालन
* जनस्वास्थ्य जागरूकता
* स्वयं सहायता समूह के माध्यम से स्वरोजगार को प्रोत्साहन
* बाढ़ से निपटने हेतु ग्राम आपदा समितियों का गठन
* आपदा क्षेत्र में बाढ़ के पूर्व, बाढ़ के समय एवं बाढ़ के पश्चात् निरन्तर जागरूकता।

उपर्युक्त कार्यक्रमों के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन न केवल प्रत्यक्ष रूप से वरन् परोक्ष रूप से भी आपदा न्यूनीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं।

2. गैर-सरकारी संगठन के द्वारा ग्रामीण विकास-

ग्रामीण विकास में एनजीओ अग्रणी भूमिका निभाते आ रहे हैं-

कार्यों का स्वरूपः(अ) एनजीओ रोजगार के क्षेत्र में खादी ग्रामोद्योग संघ का नाम उल्लेखनीय हैं।

यह संगठन लोगों को प्रशिक्षण, वित्त प्रबंध, विपणन आदि अनेक सेवाओं में सहयोग करके रोजी-रोटी जुटाने में सहयोग कर रहा है।

(ब) शिक्षा के क्षेत्र में हजारों की संख्या में संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। शिक्षाकर्मी योजना के माध्यम से राजस्थान के उन दुर्गम स्थानों को चुना गया, जहाँ आज भी आवागमन का कोई साधन नहीं है।

वहाँ स्थानीय लोगों को प्रेरित कर स्थानीय शिक्षक का चयन कर बच्चों के शिक्षण का कार्य होता है। परिणाम स्वरूप सरकार ने भी इस प्रकार के 22 हजार विद्यालय खोले हैं।

(स) जल संग्रहण के लिए भी अनेक संस्थाएं कार्य कर रही हैं। ये संस्थाएँ स्थानीय लोगों का सहयोग लेकर वर्षा जल को एकत्रित करने की व्यवस्था करने में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रही है।

3. स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्रों में एनजीओ का योगदानः-

भारत में 7000 से अधिक ऐसे एनजीओ हैं जो देश के कोने-कोने में स्वास्थ्य से सम्बन्धित उपर्युक्त क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। देश के विभिन्न भागों में किफायती और प्रभावी स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाने के वैकल्पिक आदर्श के रूप में स्वैच्छिक संगठन असली अग्रदूत बनकर उभरे हैं।

ग्राम आधारित स्वास्थ्य सेवकों, शिक्षा सामग्री और उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ सरकारी स्वास्थ्य सेवा और कार्यक्रमों में व्याप्त अभावों को दूर करने में ये संगठन पर्याप्त रूप से सफल रहे हैं।

स्वास्थ्य क्षेत्र में सक्रिय स्वैच्छिक संगठनों के बारे में मौजूदा आँकड़ों से पता चलता है कि नि:शुल्क सेवा करने वाले स्वास्थ्य संगठन, चाहे वे विदेशी सहायता पर आश्रित हों या स्थानीय, विचारधारा के स्तर पर बँटे होते हैं। कुछ पारम्परिक औषधियों को अपनाना चाहते हैं तो कुछ आधुनिक पद्धति को। उदाहरण के लिए, केरल शास्त्र साहित्य परिषद् को लेते हैं।[1]

4. गैर-सरकारी संगठन का अन्य योगदान- विश्व स्तर पर मानव तस्करी, वेश्यावृत्ति तथा अन्य अमानवीय अपराधों के विरुद्ध संघर्षरत अनेक एनजीओ में कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं-

1. अमेरिकन एण्टी स्लेवरी ग्रुप
2. एण्टी स्लेवरी इण्टरनेशनल
3. द इण्टर-नेशनल जस्टिस मिशन
4. शेयर्ड होप इण्टरनेशनल
5. नॉट फॉर सेल
6. एमनेस्टी इण्टरनेशनल
7. फ्यूचर ग्रुप
8. मैरी नेपाल
9. क्राई[2] इत्यादि।

गैर-सरकारी संगठनों की आर्थिक व्यवस्था-

एनजीओ के सामने सबसे बड़ी समस्या आर्थिक स्तर पर रहती है। राज्य सरकार के कुछ कानून व नीतियाँ भी आर्थिक मदद मिलने में कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। कई विकसित देश जैसे-ब्रिटेन, जापान, अमेरिका, स्वीडन, डेनमार्क, कनाडा आदि स्वयं सेवी संगठनों को धन देते हैं। किन्तु यह धन सरकार की स्वीकृति से और उन्हीं कार्यों के लिए दिया जाता है जो सरकार द्वारा संयोजित किये जाते हैं। अनेक अन्तरराष्ट्रीय एजेसियाँ हैं जैसे-डब्ल्यू. एच. ओ, युनेस्को, यूनिसेफ, यूएनडीपी. आईएमएफ आदि भी एनजीओ को आर्थिक सहयोग देते है।

यह धन सरकार की निगरानी में विभिन्न परियोजनाओं के लिए दिया जाता है। यह अनुदान स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, समाज कल्याण, पर्यावरण, स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा, ग्रामीण विकास विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं को दिया जाता है।

अब सरकार की नीतियाँ स्वयं सेवी संस्थाओं को बढ़ावा देने वाली बन गई हैं। केन्द्र में मानव संसाधन मंत्रालय और स्थानीय स्तर पर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, जिला परिषद् इत्यादि आर्थिक सहयोग करती हैं।[1]

निष्कर्ष:- निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में तेजी से बढ़ रहे गैर-सरकारी संगठनों का क्षेत्र व्यापक है। पर्यावरण, स्वास्थ्य, भ्रष्टाचार-विरोध, बाल-श्रम उन्मूलन, शिक्षा, महिलाओं और बच्चों के अधिकारों का संरक्षण, उपभोक्ता संरक्षण, राहत, आपदा प्रबन्धन और मानव तस्करी, वेश्यावृत्ति तथा अन्य अमानवीय अपराधों के विरुद्ध संघर्षरत अनेक गैर सरकारी संगठन कार्य कर रहे हैं। जिससे एनजीओ की गतिविधियों से करोड़ों भारतवासियों को लाभ हो रहा है।

गैर-सरकारी संगठन की भूमिका में सुधार के लिए सुझाव:-

1. जो एनजीओ देशी-विदेशी से फर्जी तरीके से अनुदान प्राप्त कर रहे हैं उन पर कठोर

कार्यवाही करनी चाहिए।

2. ऐसा एनजीओ जो वास्तव में सामाजिक हित में काम कर रहे हैं उन्हें सरकार द्वारा आसान शर्तों पर अनुदान प्रदान करना चाहिए।
3. सरकार द्वारा चलायी जा रही अनेक योजनाओं से लोगों को परिचित कराना चाहिए।
4. जो एनजीओ केवल धन कमाने के लिए कार्य कर रहे हैं उनका पंजीकरण रद कर देना चाहिए।
5. पंचायतों के ज्यादातर चुने हुए लोग अनुभवहीन एवं अनपढ़ होते हैं, कुछ कम पढ़े-लिखे होते हैं, उन्हें एनजीओ द्वारा प्रशिक्षण देकर स्वावलम्बी बनाया जा सकता है, क्योंकि एनजीओ के पास प्रशिक्षण की कई विधियाँ होती हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. योजना नवम्बर 2011 पृष्ट 31-33 एवं 35-37
2. परीक्षा मंथन-सामान्य ज्ञान का वार्षिक सर्वेक्षण 2013-14, भाग 2-3-सयुक्तांक पृष्ट-406।

सुभाष कुमार गुप्ता

प्रवक्ता-वाणिज्य

महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय

जंगल धूसड़, गोरखपुर

मो.नं.: ९८८९०३७८१७

Email-subhashsahaji@gmail.com

स्वतन्त्रता आन्दोलन में क्रान्तिकारियों की भूमिका

Mk- egUn irki flg*

भारत में ब्रिटिष्ठा ष्ठासन, ष्ठोषण, दमन एवं अत्याचार का प्रतीक था, जिसकी समाप्ति के लिए विविध राष्ट्रवादी संगठन अपने-अपने ढंग से सक्रिय रूप से संघर्षरत रहे। इन्हीं राष्ट्रवादियों का एक वर्ग ऐसा भी था जिसकी मान्यता थी कि अहिंसात्मक एवं संवैधानिक साधनों द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। अत: तोड़फोड़, हिंसा, बम विस्फोट आदि के द्वारा ष्ठासन में भय एवं आतंक पैदा करना अतिआवष्ठयक है। इसी उद्देष्ठय को लेकर भारत स्वतन्त्रता आन्दोलन में क्रान्तिकारी आन्दोलन की ष्ठुरुआत हुई।[1]

क्रान्तिकारी विचारधारा, क्रियाकलापों और आन्दोलन का एक निष्ठिचत लक्ष्य था और वह था ''देष्ठा की स्वतन्त्रता''। इन भारतीय क्रान्तिकारियों की पष्ठिभूमि में एक निष्ठिचत दर्षन था और उनका सामान्य लक्ष्य था। इन क्रान्तिकारियों के द्वारा सरकारी खजाने लूटने, सष्ठास्त्र डकैती, हत्या और बमबाजी के जो भी कार्य किये जाते थे वे सभी भारत के स्वतन्त्रता प्राप्त करने की निष्ठिचत और व्यापक योजना के अंग थे। इन क्रान्तिकारियों का उद्देष्ठय भारत में ब्रिटिष्ठा ष्ठासन को समाप्त कर स्वतन्त्रता प्राप्त करना और इससे भी आगे बढ़कर ऐसी न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना करना था जिससे कमजोर वर्ग के प्रति अन्याय की कोई स्थिति ही न रहे।[2]

क्रान्तिकारी युवकों ने इन्हें दीर्घकालीन उद्देष्ठय माना और तत्काल के लिए आयरलैण्ड राष्ट्रवादियों और रूसी निहालिस्टों (विनाष्ठावादियों) व पापुलिस्टों के संघर्ष के तरीकों को अपना लिया। तत्पष्ठचात् बदनाम अंग्रेजी अफसरों की हत्या की योजना बनी। इनका मानना था कि इस तरह की हत्या से अंग्रेजी ष्ठासकों का दिल दहल जायेगा, भारतीय जनता को संघर्ष की प्रेरणा मिलेगी और उनके दिल से अंग्रेजी हुकूमत का डर खत्म हो जायेगा। इस तरह की प्रत्येक हत्या और पकड़े जाने पर क्रान्तिकारियों को फाँसी देने से संघर्ष और जोर पकड़ेगा। इस संघर्ष के लिए बलिदानी युवकों की जरूरत थी और युवकों से अपील की गयी और देखते ही देखते तमाम युवक इस संघर्ष में ष्ठामिल हो गये।[3]

भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन भी बहुत पुराना है। बहावियों द्वारा सितम्बर 1871 ई. में कलकत्ता में चीफ जस्टिस नार्मन की हत्या और फरवरी 1872 में अण्डमान में वायसराय मेयो की हत्या क्रान्तिकारी आन्दोलन की पहली घटनाएँ थीं। 1876 के बाद मेजिनी के गुप्त संगठन ''कारबोनारी'' का अनुकरण कर कलकत्ता के विद्यार्थियों के कितने ही गुप्त संगठन बने थे, लेकिन उन्होंने आतंकवाद का रास्ता नहीं अपनाया। भारत में आतंकवाद ने संगठित रूप उन्नीसवीं सदी में अन्त और बीसवीं सदी के आरम्भ में धारण किया। रूस और आयरलैण्ड के क्रान्तिकारी आन्दोलन ने भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन को पैदा करने और संगठित रूप देने में बड़ा काम किया।[4]

भारत में संगठित क्रान्तिकारी आन्दोलन का आरम्भ महाराष्ट्र से हुआ। इसको आरम्भ करने का श्रेय चापेकर बन्धुओं को जाता है। महाराष्ट्र के नवयुवकों को अपने साथ जोड़ने के लिए उन्होंने व्यायाम मण्डल की स्थापना की। व्यायाम मण्डल की स्थापना के पीछे चापेकर बन्धुओं का उद्देष्ठय विष्ठुद्ध राजनीतिक था। वे व्यायाम और ष्ठास्त्र संचालन की ष्ठिक्षा देकर ऐसे नौजवान तैयार करना चाहते थे जो देष्ठा के लिए प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हों। वे ष्ठीघ्र ही कार्यक्षेत्र में उतरे। तत्पष्ठचात पूना में प्लेग

* iioDrk&bfrgkl foHkkx] egkjk.kk irki egkfo|ky;] txy /kIM] xkj[kiij

रोकने के नाम पर घरों में घुसकर जोर-जबरदस्ती करने के मामले में बदनाम दो अंग्रेज रैंड और एमर्स्ट की हत्या कर दी गई। हत्या के अपराध में दामोदर हरि चापेकर को 18 अप्रैल 1898 को फाँसी दे दी गयी।

8 फरवरी 1899 को व्यायाम मण्डल के सदस्यों ने उन द्रविड़ बन्धुओं को मृत्युदण्ड दे दिया जिन्होंने रूपये की इनाम की लालच में चापेकर बन्धुओं को गिरफ्तार कराया था। इसके लिए सरकार ने ''व्यायाम मण्डल'' के सदस्यों को गिरफ्तार किया। तत्पश्चात बालकृष्ण चापेकर, वासुदेव चापेकर, महादेव विनायक रानाडे समेत 4 लोगों को फाँसी दे दी गयी, और एक को आजीवन कारावास का दण्ड दिया तथा पूना के दो प्रतिष्ठित नागरिक नाटु बन्धुओं को देश्ठा निकाला दे दिया तथा बाल गंगाधर तिलक को जेल में डाल दिया गया।[6]

व्यायाम मण्डल के बाद 1899 में स्थापित 'मित्र मेला' नामक संस्था क्रान्तिकारियों के कार्यो का केन्द्र बन गयी। 1904 में सावरकर बन्धु (गणेश्ठा और विनायक) उसके प्रमुख सदस्य बन गये। इसी ''मित्र मेला'' से 1907 में एक अन्य गुप्त संस्था 'अभिनव भारत' की स्थापना हुई।[7]

1906 में विनायक दामोदर सावरकर के लन्दन चले जाने पर भी यह संस्था अपने क्षेत्र विस्तार की गति पकड़ती गयी और महाराष्ट्र के अलावा कर्नाटक व मध्यप्रदेश्ठा में भी इसकी श्ठाखाएँ स्थापित हो गयीं। इस संस्था के प्रमुख सदस्य गणेश्ठा व दामोदर सावरकर, पाण्डुरंग महादेव वायट, अनन्त लक्ष्मण कन्हारे तथा कृष्ण जी गोपाल कर्वे मुख्य थे। पूना के जिला मजिस्ट्रेट 'जैक्श्ठान' की हत्या 'अभिनव भारत' के कर्वे गुट का कार्य था।[8]

इस हत्याकाण्ड के सिलसिले में चले नासिक षड्यंत्र केस में अनन्त लक्ष्मण कन्हारे, कृष्ण जी गोपाल कर्वे तथा विनायक देश्ठापाण्डे को फाँसी व विनायक दामोदर सावरकर को देश्ठा निर्वासन का दण्ड दिया गया। महाराष्ट्र का क्रान्तिकारी आन्दोलन 1910 के बाद टूट गया। इसके टूटने का मुख्य कारण अर्थाभाव था जिसे दूर करने के लिए लूट व डकैती का रास्ता क्रान्तिकारी अपनाना नहीं चाहते थे।[9]

क्रान्तिकारी आन्दोलन का जन्म यद्यपि महाराष्ट्र में हुआ था लेकिन उसका मुख्य केन्द्र बंगाल रहा। यहाँ पर क्रान्तिकारियों का मुख्य संगठन 'अनुश्ठीलन समिति' था। इस समिति की स्थापना 24 मार्च 1903 को हुई थी। इस समिति का नाम नरेन भट्टाचार्य (एम.एन.राय) के सुझाव पर रखा गया था। अनुश्ठीलन समिति की पहली कार्यकारिणी के पाँच सदस्य जतीन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, प्रमथनाथ मित्र, चितरंजन दास, अरविन्द घोष, सुरेन्द्रनाथ ठाकुर थे। इस दौर के क्रान्तिकारियों में प्रसिद्धि प्राप्त करने वालों में वारीन्द्र घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त के नाम सम्मिलित हैं।[10]

1905 में बंगाल विभाजन के उपरान्त क्रान्तिकारी आन्दोलन में तेजी आयी। पुलिनदास ने 'ढाका अनुश्ठीलन समिति' का गठन किया। क्रान्तिकारी साहित्य का प्रकाश्ठान, नवयुवकों को सैनिक व श्ठारीरिक प्रश्ठिक्षण, धन संचय हेतु लूट व डकैती तथा सरकारी अधिकारियों एवं उनके पिट्ठुओं का वध करना बंगाल के क्रान्तिकारियों के भी मुख्य कार्य थे। 'भवानी मन्दिर' तथा 'वर्तमान रणनीति' जैसी पुस्तिकाएँ तथा 'सन्ध्या' व 'युगान्तर' जैसे पत्रों का प्रकाश्ठान क्रान्तिकारियों ने किया। इन प्रकाश्ठानों के माध्यम से क्रान्तिकारियों ने बतलाया कि भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए फौजी श्ठिक्षा व युद्ध आवश्ठयक है।[11]

रौलेट कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार 1907 से 1912 तक बमबाजी के 12, हत्या की 31, तथा डकैती की 72 घटनाएँ हुईं। खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी द्वारा मुजफ्फरपुर में जिला जज की हत्या के प्रयास में धोखे से 30 अप्रैल 1908 को जिला जज की पत्नी श्रीमती केनेडी व उनकी पुत्री की हत्या हो गयी।

इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा अलीपुर षड्यन्त्र केस चलाकर 37 क्रान्तिकारियों को सजा दी गयी। जेल के अन्दर बने सरकार के मुखबिर नरेन्दनाथ गोसाई की हत्या कन्हाईलाल दत्त तथा सत्येन्द्रनाथ बोस द्वारा कर दिये जाने से सरकार चौकन्नी हो गई।[12]

1910 में हावड़ा षड्यन्त्र केस चलना मई 1913 में वारीसाल षड्यन्त्र केस एवं जुलाई 1910 में ढाका षड्यन्त्र केस का चलना इस दौर की प्रमुख क्रान्तिकारी घटनाएँ थीं। इस दौर में क्रान्तिकारी कार्यों के लिए खुदीराम बोस (11 मई-1908) कन्हईलाल दत्त तथा सत्येन्द्रनाथ बोस को फाँसी दी गई। वारीन्द्र कुमार घोष, उल्लासकर दत्तस, हेमचन्द्र दास तथा उपेन्द्र नाथ बनर्जी को आजीवन कालापानी की सजा दी गई एवं पुलिनदास को अलीपुर केस में बंगाल से निर्वासित कर दिया गया।[13]

दिसम्बर 1909 में बंगाल में 'जाट रेजीमेन्ट' भी क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर गवर्नर जनरल व अन्य मुख्य अधिकारियों की हत्या करने की योजना बनायी थी, किन्तु भेद खुल जाने के कारण उस पर अमल नहीं हो सका। 1907 ई. तक क्रान्तिकारी आन्दोलन पंजाब व दिल्ली में भी जड़ जमा चुका था। इन क्षेत्रों में क्रान्तिकारी कार्य को आगे बढ़ाने का श्रेय सरदार अजीत सिंह, सूफी अम्बाप्रसाद, भाई परमानन्द, रास बिहारी बोस, लाला हर दयाल, मास्टर अमीचन्द इत्यादि थे। 23 दिसम्बर 1912 को लार्ड हार्डिंग के ऊपर बम फेंकना इसी गुट की कार्यवाही थी। इस काण्ड के लिए इन क्रान्तिकरियों के ऊपर दिल्ली षड्यन्त्र केस चला जिसमें अमीचन्द, अवध बिहारी, बालमुकुन्द तथा बसन्त कुमार विष्ठवास को फाँसी व चरनदास को आजीवन कालापानी की सजा दी गई।[14]

इसी प्रकार राजस्थान में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन जोरों से चल रहा था जिसके नेतृत्वकर्ता अर्जुनलाल सेठी, बरहठ केसरी सिंह तथा राव गोपाल सिंह ने क्रान्ति के कार्य को आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त बिहार में भी बंगाल के प्रभाव से क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रसार हुआ।[15]

संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध भी क्रान्तिकारियों का प्रमुख गढ़ था जिसका प्रमुख केन्द्र बनारस था, यहाँ पर ष्ठाचीन्द्रनाथ सान्याल ने 1908 ई. में अनुष्ठीलन समिति की स्थापना की थी, बाद में 1910 में इसका नाम 'युवक समिति' कर दिया गया। इस समिति में प्रमुख क्रान्तिकारी पं. रामप्रसाद बिस्मिल, योगेष्ठा चन्द्र चटर्जी थे। ष्ठाचीन्द्रनाथ सान्याल की किताब 'बन्दी जीवन' तो क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए पाठ्य-पुस्तक ही बन गयी थी, इसका अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया। अक्टूबर 1924 में इन क्रान्तिकारी युवकों का कानपुर में एक सम्मेलन हुआ और हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोसियेष्ठान (सेना) का गठन किया गया। इसका उद्देष्ठय सष्ठास्त्र क्रान्ति के माध्यम से औपनिवेष्ठिक सत्ता को उखाड़ फेंकना और एक संघीय गणतंत्र 'संयुक्त राज्य भारत' की स्थापना करना था।[16]

9 अगस्त 1925 को काकोरी ट्रेन डकैती के बाद ब्रिटिष्ठा सरकार द्वारा काकोरी षड्यन्त्र केस चलाया गया जिसमें पं. रामप्रसाद बिस्मिल, रोष्ठान सिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी को फाँसी व अन्य को आजीवन कारावास की सजा दी गयी, साथ ही अष्ठाफाकउल्ला खाँ को भी फाँसी की सजा दी गयी। काकोरी काण्ड से संगठन को धक्का लगा। किन्तु नौजवानों ने उसे पुनः मजबूत बनाने के लिए 9-10 सितम्बर 1928 को फिरोजष्ठाह कोटला के मैदान में एक बैठक की जिसमें हिन्दुस्तान सोष्ठालिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेष्ठान का गठन किया गया। 17 दिसम्बर 1928 को एच.एस.आर.ए. के प्रमुख सदस्य भगत सिंह, चन्द्रष्ठोखर आजाद व राजगुरु ने लाहौर में लाला लाजपत राय के हत्यारे पुलिस कप्तान सान्डर्स की हत्या कर बदला लिया।[17]

ब्रिटिष्ठा सरकार द्वारा असेम्बली में 'पब्लिक सेफ्टी बिल' तथा 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' का विरोध करने के लिए तथा बहरे कानों को सुनाने के लिए 8 अप्रैल 1929 को भगत सिंह व के.वी.दत्त ने केन्द्रीय

असेम्बली में बम फेंका, इसके लिए उन दोनों को 12 जून 1929 को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। लाहौर के बम बनाने के कारखाने व गुप्त केन्द्र की सरकार को जानकारी हो जाने तथा सान्डर्स की हत्याकाण्ड में भी भगत सिंह की भूमिका के कारण उन्हें लाहौर षड्यन्त्र केस में 15 अन्य क्रान्तिकारियों के साथ जोड़कर लाहौर षड्यन्त्र केस चलाकर, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फाँसी व अन्य को कालापानी की सजा दी गयी तथा जेल में ही भूख हड़ताल के 64वें दिन यतीन्द्रनाथ दास ष्शहीद हो गये।[18]

23 मार्च 1931 को भगत सिंह, राजगुरु सुखदेव के फाँसी के पूर्व 27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में चन्द्रष्शेखर आजाद पुलिस का सामना करते हुए ष्शहीद हो गये। 12 जनवरी 1934 को जब सूर्यसेन व उनके साथियों को बंगाल में मष्शुदण्ड दिया गया तो क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक प्रकार से अन्त हो गया।[19]

इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारी आन्दोलन विदेष्शों में भी फैल गया था। लन्दन में जनवरी 1905 में ष्शयामजी कष्शण वर्मा ने इण्डिया होमरूल सोसायटी की स्थापना की। 1905 में ही जुलाई माह में 'इण्डिया हाउस' का निर्माण कराया तथा 'इण्डियन सोष्शियोलॉजिस्ट' नामक पत्र का प्रकाष्शन आरम्भ किया। 1907 में ष्शयामजी कष्शण वर्मा पेरिस चले गये तथा वहीं से क्रान्तिकारी आन्दोलन का संचालन करने लगे। 1 जनवरी 1909 को मदनलाल धीगंरा ने लन्दन में विलियम कर्जन वाइली की हत्या कर दी। पेरिस में क्रान्तिकारी कार्य को आगे बढ़ाने में सरदार सिंह रेवाभाई राना, मादाम भीखाजी रूस्तम कामा मुख्य थे।[20]

स्टुटगार्ट में अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में मादाम कामा ने राना के साथ भाग लिया तथा हरा, पीला व लाल रंग का तिरंगा भारत की ओर से फहराया। मादाम कामा ने जेनेवा से 'वन्देमातरम्' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाष्शन आरम्भ किया। वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, वी.वी.एस.अय्यर, टी.पी. आचार्य उन क्रान्तिकारियों में प्रमुख थे जो पेरिस को केन्द्र बनाकर सक्रिय रहे। चट्टोपाध्याय ने 20 नवम्बर 1909 से 'तलवार' का प्रकाष्शन प्रारम्भ किया। संयुक्त राज्य अमरिका में क्रान्तिकारी कार्य को आगे बढ़ाने में ष्शुरुआती कदम भूपेन्द्रनाथ दास, बरकत उल्ला, तारकनाथदत्त आदि के थे, तारकनाथ ने अमरीका में 'फ्री हिन्दुस्तान' के प्रकाष्शन में विष्शेष योगदान दिया। 1907 में रामनाथपुरी ने सेन फ्रांसिस्को में 'हिन्दुस्तान एसोसियेष्शन' की स्थापना की। इसी वर्ष 'भारतीय स्वाधीनता संघ' स्थापित किया गया। 1911 में लाला हरदयाल अमरीका पहुँच गये। उन्होंने पोर्टलैण्ड में सक्रिय काष्शीराम व सोहन सिंह के क्रान्तिकारी ग्रुप से सम्पर्क किया व 1913 में इस संगठन का नाम 'गदर पार्टी' रख दिया गया।[21]

प्रथम विष्शवयुद्ध के दौरान विदेष्शों में क्रान्तिकारी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बर्लिन हो गया था। ब्रिटिष्श सरकार की मुसीबतें बढ़ाने के लिए जर्मनी भारत के क्रान्तिकारियों की हर सम्भव मदद करने को तैयार था। जर्मन सरकार व क्रान्तिकारियों के विचार-विमर्ष्श के फलस्वरूप 'जिमरमेन योजना' तैयार हुई। इस योजना के तहत इण्डिया इण्डिपेन्डेस कमेटी का गठन 1915 में किया गया।[22]

इस प्रकार क्रान्तिकारी इतिहास के तीन दष्शकों में वैचारिक स्तर पर क्रान्तिकारी आन्दोलन एक ही बिन्दु पर नहीं रहा। साम्राज्यवाद का विरोध, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बल प्रयोग में विष्शवास तथा देष्श के लिए सब कुछ उत्सर्ग कर देने की उत्कष्श्ट भावना के रहते हुए भी वैचारिक दष्शिकोण से अलग-अलग दौर के क्रान्तिकारी अलग-अलग स्तर पर रहे।[23]

आरम्भ के क्रान्तिकारी साम्राज्यवाद का अन्त चाहते थे किन्तु क्रान्तिकारियों पर धर्म की गहरी छाप थी, अपने कार्यों के लिए वह एक प्रकार की रहस्यवादिता से प्रेरणा पाते थे, कहीं-कहीं पर तो उनकी धार्मिकता संकीर्णता का रूप ग्रहण कर लेती थी। उदाहरण के लिए ''ढाका अनुष्शीलन समिति'' में

मुस्लिमों को सदस्यता नहीं दी जाती थी। वैचारिक स्तर पर गदर पार्टी आरम्भ के इन क्रान्तिकारियों से एक कदम आगे थी। देष्ठा की आजादी के लिए उन्होंने सभी सम्प्रदायों के लोगों के एकजुट प्रयासों पर जोर देकर धर्म निरपेक्षता को बढ़ावा दिया। व्यक्तिगत हिंसा के स्थान पर उन्होंने सष्ठास्त्र सैनिक संघर्ष के महत्व को समझा। संघर्ष के रास्ते के रूप में 'छापामार युद्ध पद्धति' का तथा सेना के मध्य क्रान्तिकारी काम को ले जाने के सिद्धान्त का उनके द्वारा प्रतिपादन किया गया।[24]

युद्धोत्तरकाल के क्रान्तिकारी विचारों के स्तर एक कदम और आगे बढ़े। साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने के बाद भारत का रूप क्या होगा? इसका स्पष्ट चित्र उनकी आँखों के सामने था। आरम्भ में वह प्रजातान्त्रिक जनतन्त्रीय व्यवस्था से सन्तुष्ट थे, किन्तु बाद में रूसी क्रान्ति के प्रभाव में वह समाजवादी व्यवस्था के समर्थक बन गये। इसी कारण एच.आर.ए. का नाम बदलकर एच.एस.आर.ए. किया गया। उनके स्वतन्त्रता का तात्पर्य मात्र राजनीतिक ही नहीं बल्कि यह ष्ठोषण व उत्पीड़न से मुक्ति दिलाना था। अब ये महसूस करने लगे कि इस प्रकार की क्रान्ति जनक्रान्ति ही हो सकती है जिसके लिए जनता को संगठित करना आवष्ठयक है। क्रान्तिकारियों के विचारों में यह बदलाव लाने में रूसी क्रान्ति के प्रभाव की अहम भूमिका रही।[25]

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्तिकारी तत्काल ही अपने लक्ष्य प्राप्ति में भले ही असफल रहे हों लेकिन क्रान्तिकारी आन्दोलन ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में अपूर्व योगदान दिया। क्रान्तिकारियों ने अपने बलिदान से नौजवानों को स्वतन्त्रता संघर्ष के भागीदार बनने के लिए उत्साहित किया।[26]

पूरे आधुनिक भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन में क्रान्तिकारियों की भूमिका का अवलोकन करने से यह लगेगा कि राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन पूर्ण रूप से या तो सफल नहीं हो सकी या उनकी सभी योजनाएँ क्रियान्वित न हो सकीं या फिर साम्राज्यवाद ने उनका असफल बना दिया। क्रान्तिकारी आन्दोलन कभी भी अपने को आजादी की लड़ाई की मुख्यधारा के रूप में स्थापित नहीं कर सका, क्योंकि काँग्रेस व गाँधी ने उसे एक किनारे करके इतिहास में महत्त्वहीन बना दिया।[27]

क्रान्तिकारियों के योगदानों का सही मूल्याँकन यह है कि ''काँग्रेस ने सरकार को चिन्तातुर बना दिया, परन्तु ब्रिटिष्ठा सरकार की असली समस्याएँ अराजकतावादियों (क्रान्तिकारियों) ने ही खड़ी की।'' एम.एन. डास. के अनुसार यदि क्रान्तिकारियों की एक के बाद एक लहर आती ही चली जाती, तो इस महाद्वीप पर बिखरे हुए मुट्ठी भर अंग्रेज इन अराजकतावादियों (क्रान्तिकारियों) के हमलों को अधिक समय तक नहीं रोक पाते और आजादी वास्तव में जिस समय मिल सकी, उससे बहुत पहले ही मिल गयी होती।[28]

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह: ''भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन'' नयी दिल्ली-1957, पष्ट-54
2. डॉ. पुखराज जैन: ''भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास'', आगरा-1993, पष्ट -100
3. विपिन चन्द्र: ''भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेष्ठालय, नयी दिल्ली, पष्ट-205
4. अयोध्या सिंह: ''भारत का मुक्ति संग्राम'' नयी दिल्ली, पष्ट-205
5. रमेष्ठाचन्द मजूमदार: ''भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास'' कलकत्ता-1971, पष्ट-50
6. सरजेम्स कैम्पबेल: ''पॉलिटिकल ट्रबुल्स इन इण्डिया'' कलकत्ता-1973, पष्ट-20
7. अयोध्या सिंह:'' भारत का मुक्ति संग्राम'' नयी दिल्ली पष्ट सं.-207

8. डॉ. पुखराज जैन:''भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास'' आगरा-1993, पष्ट-104
9. सुमित सरकार:''आधुनिक भारत'' राजकमल प्रकाष्ठान नयी दिल्ली, पष्ट-176
10. विपिन चन्द्र:''भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेष्ठालय, नयी दिल्ली-1993, पष्ट-98
11. अयोध्या सिंह:''भारत का मुक्ति संग्राम'' नयी दिल्ली, पष्ट-209
12. रामलखन ष्ठुक्ल:''आधुनिक भारत का इतिहास'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेष्ठालय, नयी दिल्ली, पष्ट-458
13. रमेष्ठाचन्द्र मजूमदार:''भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास'' कलकत्ता-1971, पष्ट-52
14. वही-, पष्ट-52
15. सर जेम्स कैम्पबेल:''पॉलिटिकल ट्रबुल्स इन इण्डिया'' कलकत्ता-1973, पष्ट-364
16. बनारस कान्स्पिरेसी केस फाइनल रिपोर्ट, पष्ट-5, उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार लखनऊ
17. विष्ठवमित्र उपाध्याय:''ष्ठाचीन्द्रनाथ सान्याल और उनका युग'' नयी दिल्ली (1983) पष्ट -157
18. डॉ. पुखराज जैन:''भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास'' आगरा-1993, पष्ट-107
19. विपिनचन्द्र:''भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेष्ठालय, नयी दिल्ली-1993, पष्ट-191
20. सुमित सरकार: ''आधुनिक भारत'' राजकमल प्रकाष्ठान, नयी दिल्ली-178
21. वही, पष्ट-178
22. रामलखन ष्ठुक्ल : ''आधुनिक भारत का इतिहास'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेष्ठालय, नयी दिल्ली-पष्ट-459-60।

उत्तर आधुनिकता : हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में

vkjrh flag*

हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिकता का अध्ययन करने से पूर्व पष्ठभूमि स्वरूप आधुनिकता पर संक्षिप्त प्रकाष्ठा डालना आवष्ठयक है। आधुनिकता 'अधुना' ष्ठाब्द से बना है जो वर्तमान को सूचित करता है। आधुनिकता का सम्बन्ध आधुनिकीकरण के फलस्वरूप पुरातन तथा परम्परागत मूल्यों, विचारों, धार्मिक विष्ठवासों, रूढ़िगत रीति-रिवाजों, पारिवारिक स्वरूप, सामाजिक ढाँचे, रहन-सहन के विरुद्ध वैज्ञानिक आविष्कारों तथा विचारों, नये मूल्यों और रवैयों से है। डॉ. ष्ठाम्भूनाथ लिखते हैं-"आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है, जीवन को समझने जानने और रचने की विकासष्ठील दष्टि है।"[1] जब नये मूल्य पुराने मूल्यों से टकराते हैं तो नूतन का तीसरे मूल्य का जन्म होता है तीसरे मूल्य का नाम ही आधुनिकता है। मनुष्य को आध्यात्मिक मानवता से विमुक्त करके, प्राचीन प्रतिमानों, सम्बन्धों, संस्कष्ति, परम्परा आदि के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष का नाम ही आधुनिकता है।

आधुनिकता का विकास बुद्धि के विकास के साथ-साथ सभ्यता का विकास होता रहता है। यूरोप में 14वीं-15वीं ष्ठाताब्दी में नवजागरण की दस्तक हुई।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का पदार्पण नवजागरण के साथ ही हुआ जिसे भारतेन्दुकाल के नाम से जाना जाता है। आधुनिकतावादी साहित्यकारों ने विष्ठव की पुरानी मान्यताओं को अस्वीकार किया, परम्परा का विद्रोह किया, लेखन कार्य में स्वीकष्त ष्ठौली भाषा, रूप प्रतीक के प्रति भी प्रयोगष्ठील हुए साहित्य में चौंका देने वाली बातों, चुनौतियों का समावेष्ठा हुआ। इस युग में ऐसा साहित्य लिखा जाने लगा जो हमें हिलाये, झकझोरे, चिन्तन के लिए बाध्य करे; दिल को दुखाये और पीड़ित करे, मान्य अवस्थाओं को तोड़े और समय की कुण्ठाओं को सामने रखे, इसका प्रभाव नाटक, कहानी, उपन्यास कविता आदि सभी पर पड़ा।

उत्तर आधुनिकता एक नयी अवधारणा है। बीसवीं ष्ठाताब्दी के बाद समाज, संस्कष्ति, अर्थव्यवस्था, राजनीति, कला, संगीत, वास्तुकला, साहित्य और चिन्तन में जो परिवर्तन आये हैं, उत्तर आधुनिकता उनको परिलक्षित करने वाला एक व्यापक लेकिन विवादास्पद पारिभाषिक ष्ठाब्द है। उत्तर आधुनिकता पहले जर्मनी (नीत्ष्ठो) फिर फ्रांस (लियोतार, फूको बौद्रिया, देरिदा) से होते हुए यूरोप और फिर अमेरिका में प्रविष्ट हुआ, अब इसकी अनुगूँजें भारत में भी सुनाई देने लगी हैं।

उत्तर आधुनिकता मूलतः यूरोपीय अवधारणा है जिसे आरम्भ में आधुनिकता के साथ असहमति और उसकी समाप्ति के पष्ठचात एक नयी ष्ठौली के रूप में जाना जाता था। उत्तर आधुनिकता की एक व्याख्या यदि यह है कि वह सज्ञान और सौन्दर्य ष्ठाास्त्रीय क्रियाष्ठीलता का कोई नया क्षेत्र नहीं निर्मित करती है, तो उसकी अन्य व्याख्याएँ इसके दूसरे पक्ष को समर्थन देती हैं। इस तरह उत्तर आधुनिकता की एक समस्या उसके पाठ को बनाने की है।

उत्तर आधुनिकता सत्यों, तर्कवाद एवं आधुनिकता की समक्षता को नकारती है; सिद्धान्त तथा व्यवहार के भेद को मिटाती है। कोई भी सिद्धान्त पूर्ण या पर्याप्त नहीं है, अन्तिम और अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। उत्तर आधुनिकता में सम्पूर्णता का अभाव है, क्योंकि वह किसी भी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करती। यह ऐसे किसी भी विचार या सिद्धान्त का घोर विरोध करती है जो इस बात का दावा करता है

* iloDrk&fgUnh foHkkx] egkjk.kk iz rki egkfo|ky;] txy /kkSM] xkj[kiqj

कि तर्क संगत विज्ञान और प्रौद्योगिकी ष्टाक्ति के सहारे विष्ठव मानवता का उद्धार कर सकती है। देवेन्द्र इस्सर कहते हैं कि–''आधुनिकता जो बुर्जुआ के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रकट हुई जिसे पूँजीवाद ने अपने साथ मिला लिया है या कि जनमाध्यमों, सूचना टेक्नोलॉजी, आनन्द लिप्सु, उपभोक्तावाद, आक्रामक भौतिकवाद और आर्थिक सांस्कष्तिक सार्वभौमिकता के कारण हो रहे परिवर्तन को उत्तर आधुनिकता का नाम दिया है।'''[2]

उत्तरआधुनिकता के अध्ययन क्रम में कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर संकेत करते चलें–

* फूकोयामा नामक विद्वान उत्तर आधुनिकता में इतिहास का अन्त मानता है।[3]
* 19वीं ष्ठाताब्दी में नीत्ठो ने खुलकर ईष्ठवर के मष्त्यु की घोषणा की और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ईष्ठवर की परिकल्पना के मूल में मनुष्य की उद्विग्नता और दुर्बल विवेक ही कारण रहे हैं।[4]''
* फूकोयामा विचारधारा का अन्त मानते हैं।[5]
* इलियट ने–उपन्यास की मौत की घोषणा की।[6]
* विल्सन का कहना है कि ''काव्य एक मरती हुई विधा है।''[7]
* फूको देरिदा और रोला बार्थ कहते हैं–''लेखक का जन्म होते ही लेखक की मष्त्यु हो जाती है।''[8]
* आलोचक की मष्त्यु–''ल्योतार यह मानते हैं कि हमें विकास और प्रगति के झगड़े तक सीमित न रहकर अभिव्यक्ति के हर पक्ष पर ध्यान देना चाहिए और वे सम्पूर्णता में लड़ाई लड़ने का आह्वान करते हैं जिसमें किसी आलोचक की आवष्ठयकता नहीं है।''[9]

हिन्दी साहित्य में अस्सी के दष्ठाक से इसकी चर्चा ष्ठुरू हो गई। मुक्ति आन्दोलन, विडियो, मीडिया, कैमरा, कम्प्यूटर, टेक्नोलॉजी सूचना विस्फोट, विखण्डनवाद आदि उत्तर आधुनिकता की संज्ञा दी गई। ''उत्तर आधुनिकता की सबसे ज्यादा मार साहित्य पर पड़ी। उत्तर आधुनिकता ने साहित्य की स्वायत्तता को नकारते हुए लेखक को दर–किनार कर उसे केवल अन्य किसी भी लेखन के समान मात्र एक पाठ मानने पर बल दिया है वह साहित्य की आवष्ठयकता है, अस्तित्व और स्वायता का नकार नहीं बल्कि भविष्य में साहित्य के होने न होने में कोई फर्क नहीं मानता है''[10]

उत्तर आधुनिकता ने साहित्य के अध्ययन, ष्ठोध और आलोचना के मानदण्ड और तरीके सभी बदल दिये हैं। वह उसके लिए विसंरचना को अनिवार्य मानती है। कोई भी साहित्य एक पाठ के रूप में अपने अध्ययन की दष्टि से सौन्दर्यष्ठास्त्र की परिधि में नहीं पढ़ा जा सकता। अब उसने संरचनावाद, उत्तरसंरचनावाद, नव इतिहासवाद, सांस्कष्तिक मार्क्सवाद, नारी व दलित इत्यादि को पाठ के केन्द्र में रखकर आलोचना के मुद्दे बना दिये हैं। इससे आलोचना और पाठ का पारम्परिक रिष्ठता समाप्त हो गया है और आलोचना की अपनी स्वायत्तता सामने आने लगी जो साहित्य के लिए एक और कुठाराघात सिद्ध हुई।

देरिदा ने अपने विसंरचनावाद से और आगे बढ़कर साहित्य और दर्ष्ठान को अस्वीकार कर दिया। उसने कहा साहित्य एक चिन्तन नहीं बल्कि सिर्फ एक लेखन है, जब सारे ही ष्ठास्त्र स्वयं में 'फिक्ष्ठान' हैं तो जिसे हम कथा साहित्य कहते हैं वह भी अन्य ष्ठास्त्रों के समान एक लेखन है। उत्तर आधुनिक दौर में साहित्य के यथार्थ को भ्रम बताया गया और कहा गया कि वह भी गढ़ा हुआ और सायास आकार है। इसका मूल यथार्थ से दूर का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि इसे छलना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस

प्रकार उत्तर आधुनिकता ने अपने दौर में साहित्य को एक प्रकार से निरर्थक ही सिद्ध कर दिया है। इसलिए यह विचारणीय है कि हम साहित्य की स्वायत्तता आदि पक्षों पर विचार करते हुए इस वस्तुस्थिति-जो उत्तर आधुनिकता ने हमारे सामने रखी है, उसकी विसंरचना और विकेन्द्रीकरण करते हुए साहित्य की सही जानकारी प्राप्त करें।

कॉलरिज ने यह कहा था कि- ''महान दार्ष्टानिक हुए बिना कोई महान् साहित्यकार नहीं हो सकता। उत्तर आधुनिकता, दर्ष्टान को साहित्य से अलग कर रही है और यह प्रतिष्ठित करने का भ्रम पैदा करने का प्रयास करती है कि दर्ष्टान के केन्द्र में कोई सोच होती ही नहीं। दूसरी ओर वह समाजष्ठास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि के प्रभावों को साहित्य पर इसलिए थोपती, क्योंकि वह साहित्य को इतिहास और इसके समान ही एक लेखन का दर्जा देना चाहती है।''[11]

हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिक स्थितियों का दाखिला हो चुका है। हमारे साहित्य उत्तर आधुनिक बन रहे। हमारी बहसों में अचेत रूप से बदले हुए जगत् के चित्र साहित्य में आने लगे। आधुनिक औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का साहित्य पर प्रभाव पड़ा। उत्तर आधुनिक लेखक अब ष्ठाहरीपन, अराजकता, भ्रष्टाचार जैसे ष्ठौतान की तरफ जा जा चुका है। भारतीय साहित्य पर अब मीडिया का प्रभाव बन गया है। उत्तर आधुनिक प्रगतिष्ठील साहित्य में मनुष्य का सुख-दु:ख जिन राजनीतिष्ठास्त्रीय प्रतिक्रियाओं से गुजरता है उसमें पूँजीवाद, ष्ठोषण उत्पीड़न आदि आता है। हिन्दी में समकालीन विमर्ष्ठा में व्यावसायिक से उसका नया स्थायी भाव बना है। हिन्दी क्षेत्रों से तात्पर्य यह है कि इन दिनों हिन्दी के कवियों, संस्कष्ठि कर्मियों, कथाकारों, विचारकों पर बाजार का बेहद प्रभाव है। साहित्य खूब बाजार में आ रहा है। यह उत्तर आधुनिकता का प्रभाव है।

उत्तर आधुनिक साहित्य में दलित विमर्ष्ठा, स्त्री विमर्ष्ठा, आदि आ रहा है। कथित सरोकारों की धज्जियाँ इसलिए उड़ीं कि साहित्य की प्रासंगिकता बदल गयी है। उत्तर आधुनिक युग में जन संचार के प्रभाव के कारण साहित्य का संसार सिमटता जा रहा है और उसका महत्त्व कम हो रहा है। उत्तर आधुनिकता के कई वैचारिक पद्धतियों का साहित्यिक चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी कथा साहित्य (उपन्यास) के क्षेत्र में ज्ञान मीमांसा के स्थान पर उसका स्थान सत्ता मीमांसा ने ले लिया। किसी जटिल व सरल वास्तविकता की खोज की जगह पर उपन्यासकार भ्रमित दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए मैक्सले ने कहा है कि-'उपन्यास का अनिवार्य तोंप एक टेकनिक की जरूरत है, जो विष्ठवासों के साथ-साथ अविष्ठवासों को भी स्थगित रख सके।'[12]

इसी प्रकार साहित्य में उत्तर आधुनिकता के सन्दर्भ में डॉ. सुधीष्ठा पचौरी का कथन है कि 'साहित्य, संस्कष्ठि का केन्द्रच्युत होना इस वातावरण में अनिवार्य है, वे अपने आदिकालीन प्रचारक रूप को त्याग देते हैं। वे या तो नये प्रचार, औजार बनकर रहते हैं या फिर कोने में पड़े पुराने बर्तनों की तरह होते हैं जो कबाड़ी को बेच दिये जायेंगे। अनुभवों की इस चरम घड़ी में साहित्य कैसे बचे।'[13]

उत्तर आधुनिकता पर जिस गति से विचार हो रहा है जिस रफ्तार से वह साहित्य में आ रहा है उसे देखकर लगता है कि कोई भी अध्ययन योजना उसकी मुकम्मल तस्वीर नहीं खींच सकती है, जब हम एक लाइन खीचेंगे तब तक वह आगे चला जायेगा।

बाजार की ष्ठाक्तियों ने साहित्य की भूमिका और रूप दोनों बदल दिये हैं। आज हिन्दीभाषी जनता अधिक ष्ठिाक्षित एवं साक्षर है, इन दिनों हिन्दी के कवियों, संस्कष्ठि कर्मियों, कथाकारों, विचारकों के लिए

बाजार एक बेहद आसान विषय है। अब साहित्य बाजार में आ रहा है और उपभोग का हिस्सा बन रहा है। इससे हिन्दी के लेखक की नींद खुली है यद्यपि विचारों में वह अब भी साधुसंतवादी है लेकिन अवसरों को अपने अनुकूल करने, इनामों आदि को अपने अनुकूल करने और उनकी तलाष्ठा करने की छीन-झपट में अव्वल रहने की होड़ में लगे रहना उसको सुहाता है।[14]

उत्तर आधुनिकता लेखक के अवसान की घोषणा करता है और पाठ के वर्चस्व को स्वीकार करता है। साहित्य की प्रासंगिकता तो अब गयी चारों तरफ हाहाकार व्याप्त है। हिन्दी साहित्य की यह एक उत्तर आधुनिक स्थिति है जो महानगरों, कस्बों और गाँवों तक फैली है। प्रासंगिकता और सरोकार की बातें सबसे ज्यादा साहित्य करता है। सरोकार, प्रासंगिकता, जनता, गरीबी, संघर्ष, अपसंस्कष्ति की व्याख्या की कविता को किसी हमला से बचाता है।

आज साहित्य और कला मुनाफे से सम्बद्ध हो गयी हैं, वे जितना मुनाफा देती हैं उतनी ही मूल्यवान हैं। लेखक बदल गया है और नितान्त निजी यष्ठालाभ के लिए वह उस उद्योग का स्वयं को हिस्सा समझने लगा है, जिसे पहले के रचनाकार घष्टा से देखा करते थे।

उत्तर आधुनिक स्थितियों ने जब महानता के नाटक को नष्ट किया तो उसके बीच से दलित और स्त्री-विमर्ष्ठा निकले। दोनों ने साहित्य की अवधारणा के केन्द्र को हिला दिया है। अब साहित्य में दलित जाति प्रसंग उठने लगे, स्त्रीलिंगीय प्रसंग उठने लगे। ये प्रसंग अध्ययन और समझ के विचार मांगते हैं।

कला और साहित्य के क्षेत्र में उच्च-निम्न कुछ नहीं होता। यह विचार उत्तर आधुनिक विचार है। इसमें जो लोग उपेक्षित हैं, दलित हैं सब बराबरी पाते हैं। दलित और स्त्री विमर्ष्ठा ऐसे ही साहित्य-विमर्ष्ठा हैं। उत्तर आधुनिकता के इतिहास में राजा और रंक ष्ठाब्द बराबर है। उत्तर आधुनिकता समाज के पिछड़े एवं जाति निष्कासित लोगों के लिए न्यायपूर्ण यथार्थवादी भविष्य सुनिष्ठिचत करने की माँग करता है। अब लेखक इस विष्ठाल देष्ठा के उपेक्षित क्षेत्रों के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हैं, और अपने जीवन अनुभवों के बारे में लिखते हैं।

मीडिया जिसे उत्तर आधुनिकता की देन कहा जा सकता है साहित्य को समाप्त कर देने पर तुला है। उत्तर आधुनिक युग में संचार के प्रभाव के कारण साहित्य का संसार सिमटता जा रहा है। साहित्य की जरूरत किसी को भी नहीं है। जैसे-पत्र साहित्य। सभी लोग अपने-अपने क्षेत्र में साहित्य के बगैर काम कर सकते हैं।

उत्तर आधुनिकता का साहित्य चिन्तन तथा सिद्धान्त पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यह किसी सर्व मानदण्ड के प्रतिमान को स्वीकार नहीं करता है। क्योंकि यह प्रतिमान अभिजात्य वर्ग द्वारा बनाये गये हैं। उत्तर आधुनिकता यंत्रवाद की बात कितना भी कर ले, भाव-भावना का अस्तित्व बना ही रहेगा। साहित्य लिखने या पढ़ने वाले की सोच सदैव से बहुत थोड़े लोगों तक सीमित रही है। फिर हमें यह नहीं भूलना चाहिए, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग अथवा ब्लू प्रिंट, वैज्ञानिक यन्त्रों के निर्माण में भी मानव मस्तिष्क ही काम करता है। कम्प्यूटर पर या फिल्मी इमेजिंग में ढलने से पहले साहित्य को लेखन से गुजरना पड़ेगा जिसमें साहित्यकार ही होगा। मनुष्य के मन को बोध के रूप में अधिकतम साहित्य को मिला है विज्ञान या अन्य ज्ञान के क्षेत्रों से नहीं। इसलिए साहित्य का महत्त्व कम होते हुए भी कम नहीं हो पायेगा, स्वयं मेकलूहान ने यह माना है कि- साहित्य मानव सम्प्रेषण का अति विष्ठोष माध्यम है जिसका मुकाबला और कोई नहीं कर सकता, वह सदा बना रहेगा।

उत्तर आधुनिकता ने अपनी व्यवस्था, चिन्तन-मनन इत्यादि के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष प्रदान किये हैं

वे एक सीमा तक ठीक होते हुए भी उसका भविष्य के प्रति चुप्पी साधना या फिर केवल अंधकार ही अंधकार को फैलाना मान्य हो सकता है। उत्तर आधुनिकता की दिष्ठा में सोचने वाले विद्वानों से भी यही आग्रह है कि वे इसकी झोंक में आकर इसकी अनाप-ष्ठानाप समीक्षा न करें क्योंकि कम से कम भारतीय सन्दर्भों में इसे वैसे ही अपनाया नहीं जा सकता।

आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिकता की तुलना-

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता का प्रष्ठन बहुत जटिल रहा है। उत्तर आधुनिकता को आध ुनिकता के विस्तार के रूप में देखा गया है और असहमति व विरोध के रूप में भी। उत्तर आधुनिकता अन्य माध्यमों का ही विस्तार एवं इसकी परिपूर्ति है। उत्तर आधुनिकता केन्द्रीय वर्चस्व के विपरीत स्थायी भेदों पर बल देती है। आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की तब्दीली परिवर्तन प्रक्रिया की सोपान है। उत्तर आधुनिकता एक अधूरी परियोजना में आधुनिकता की धारणा की आलोचना की है। आधुनिकता के दौर में पष्ठिचमी चिन्तन ने बौद्धिक प्रभुत्व का रूप ले लिया और अब उत्तर आधुनिकता के दौर में इन सभ्यताओं के समग्र यथार्थबोध पर हावी हो रहा है। उत्तर आधुनिकता स्थानीय भेदों पर बल देती है जबकि आधुनिकता सार्वभौमिकता तथा एकरूपता पर बल देती है। आधुनिकता में पुनः निर्माण, पुनः स्थापना आदि और उत्तर आधुनिकता में विसंरचना, विकेन्द्रीकरण आदि ष्ठाब्द प्रचलित हैं। उत्तर आधुनिकता आधुनिकता का अन्त नहीं, बल्कि यह उसके भीतर हमेष्ठा प्रस्फुटित होने की अवस्था में मौजूद है और यह अवस्था निरन्तर जारी है।

अमेरिकन उपन्यासकार जानबार्थ आधुनिक और उत्तर आधुनिकता की तुलना करते हुए कहते हैं-''उत्तर आधुनिकता अनिवार्य रूप से आधुनिकता की संस्कष्ति का विस्तार उसका परिष्कष्त रूप है इसे वह कथा वर्णन के तरीके में देखते हैं।''[15]

भारत में आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिकता एक दूसरे के विपरीत न होकर पूरक है। भारत के परिप्रेक्ष्य में उत्तर आधुनिकता मीडिया संचालित एवं बाजार निर्देष्ठित तथ्यों की प्रतिक्रिया के रूप में सामने आया है। यह साठ के दष्ठाक की आधुनिकता के प्रति एक प्रतिक्रिया है जो एक विष्ठोष जीवन ष्ठौली एवं जीवन दष्टिकोण से जुड़ी हुई है।

साहित्य जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्या नहीं है, सामान्य लोगों के लिए जिसमें अभिजात्य वर्ग भी ष्ठामिल है। धनी, निर्धन, मध्य वर्ग, ष्ठिक्षित, अष्ठिक्षित, युवा, वष्द्ध, स्त्री-पुरूष किसी के लिए साहित्य का कोई महत्त्व नहीं। ष्ठायद कुछ लेखकों को छोड़कर साहित्य किसी को ख्याति पद-प्रतिष्ठा, धन, लोकप्रियता सुख-सुविधाएँ कुछ भी नहीं दे सकता।

सन्दर्भः-

1. आलोचना पत्रिका-अंक 81, पष्ठ 7
2. देवेन्द्र इस्सर, ''उत्तर आधुनिकता, साहित्य और संस्कष्ति की नयी खोज''
3. बैजनाथ सिंहल, ''उत्तर आधुनिकता स्वरूप और आयाम'' पष्ट-69
4. पष्ट-66
5. पष्ट-72
6. पष्ट-75

7. पष्ट-75
8. देवन्द्र इस्सर,- ''उत्तर आधुनिकता, साहित्य और संस्कष्ति की नयी सोच'' पष्ट-60
9. थामस डाकर्टी-''पोस्ट माडर्निज्म ए रीडर'' पष्ट-46
10. बैजनाथ सिंहल-''उत्तर आधुनिकता स्वरूप और आयाम'' पष्ट-80
11. पष्ट-83
12. रीडर क्रिस्टाफोर वी मैकहाले- ''पोस्ट माडर्निज्म फिक्ष्शान'' पष्ट-27
13. सुधीष्ठा पचौरी- ''उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद'' पष्ट-14
14. सुधीष्ठा पचौरी- ''साहित्य का उत्तर : कला और बाजार'' पष्ट-28
15. माडर्न लिटरेरी थ्योरी एडिटेड बाई वॉग एण्ड राइस पष्ट-307।

‘विद्या’ एवं इसके सम्प्रदान की वैदिक प्रक्रिया

Mk- n|xi'k ik.Ms; ^lkdR;k;u*

भारत की विष्ठिाष्टता, आध्यात्मिकता, महत्ता एवं सनातन गरिमा का कारण इसकी विद्यामूलकता में निहित है। यद्यपि इस देष्ठा के ‘भारत’ नामकरण में ‘भरत’ नामक सम्राट का पौराणिक व्यक्तित्व है, तथापि व्युत्पत्ति की व्यंजना इसकी विद्यानुरागिता को ही ध्वनित करती है, यथा–‘भा’ का अर्थ है– ज्ञान या प्रकाष्ठा एवं रत से तात्पर्य है–सतत संलग्नता। ज्ञान प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नष्ठीलता भारत की मौलिक विष्ठोषता है, आदिकाल से अपनी जिज्ञासाओं के प्रत्युत्तर में, भष्ठु–अंगिरा प्रभष्ठ ऋषियों से रक्षित–पोषित विष्ठव–पटल पर पहली विचारष्ठील एवं परिमार्जित सभ्यता का आविर्भाव हुआ, जिसे संस्कारित होने से संस्कष्ठि का अभिधान प्राप्त हुआ ऐसा वैदिक ऋषियों का स्पष्ट उद्‌घोष है–

‘या प्रथमा संस्कष्ठिः विष्ठवकर्मा
यो मध्यमो बष्ठस्पतिष्ठिचकित्वान्।’[1]

वेद विद्या ऋषियों के परा–ज्ञान की ध्वजा एवं इस संस्कष्ठि के निर्माण की बीजरूपा है, सनातन संस्कष्ठि के समस्त आयाम इसी से विनिर्मित है, ऐसा परवर्ती ष्ठाास्त्रकार भी मुक्तस्वर से स्वीकार करते हैं।[2] भारत को विभिन्न लौकिक–अलौकिक ‘विद्याओं का देष्ठा’ कहना अतिष्ठायोक्ति का उच्चारण नहीं वरन् एक सत्य है। अक्षरज्ञान से ‘अक्षर ब्रह्म’ तक एवं बन्धन से मोक्ष तक इस संस्कष्ठि के जीवन की वाहिका विद्या ही है, सम्भवतः यही कारण है कि यहाँ प्राथमिक जिज्ञासु से लेकर अन्तिम अध्येता तक को विद्यार्थी कहा जाता है। विष्ठव की प्रथम संस्कष्ठि के प्रथम साहित्य होने के कारण वैदिक वाङ्मय में विद्या एवं उसके सम्प्रदान की स्थिति पर दष्टिपात करना भारत में विद्या की स्थिति को समझने में सहायक होगा।

<u>विद्याः निर्वचन एवं अर्थ–</u>

‘विद्या’ पद करण अर्थ में स्त्रीलिंग में ज्ञानार्थक √विद्+क्यप्+टाप् से निष्पन्न होता है,[3] जिसकी व्युत्पत्ति है– ‘विद्यते गष्ठ्यतेऽनयाऽर्थ इति विद्या।’ अर्थात् जिसके द्वारा कुछ जाना और प्राप्त किया जाये वह विद्या है।[4] वाचस्पत्यम् में ‘ज्ञान’ एवं ‘तत्त्वसाक्षात्कार’ के अर्थ में इसका प्रयोग कहा गया है।[5] इसका विपरीतार्थक ‘अविद्या’ पद नञ्+विद्या के समास से निष्पन्न होता है।

समग्र वैदिक वाङ्मय में यह तीन अर्थों में प्रयुक्त है– त्रयी (वेदविद्या), दुर्गा एवं आत्मज्ञान।

ऋग्वेद में ‘विद्याम्’ और ‘विद्याम’ पद कुल 28 बार आये हैं,[6] पर विद्या पद मात्र ‘खिल सूक्त’ में प्रयुक्त है।[7]

ष्ठाुक्ल यजुर्वेद में ‘विद्या’ के साथ ‘अविद्या’ का भी उल्लेख है जहाँ यह देवताज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त है।[8] तैत्तिरीय संहिता में यह बुद्धि के अर्थ में प्रयुक्त है– ‘विद्या वैधिषणा।’[9] बुद्धि एवं त्रयी के अर्थ में यह कष्ठण यजुर्वेद की अन्य ष्ठााखाओं में भी प्राप्त होता है।[10] अथर्वसंहिता (ष्ठाौनकीया) में यह मात्र दो स्थानों पर आया है, जहाँ यह सामान्य ज्ञान और त्रयीविद्या का वाचक है।[11]

ब्राह्मण ग्रन्थों में यह ‘त्रयी’ के साथ बहुधा प्रयुक्त है, यथा–

‘‘सैषा त्रयी विद्या यज्ञः’’[12] ‘ब्राह्मणा च त्रय्याविद्ययापर्यगष्ठ्णन्[13]’
त्रयी वै विद्या–ऋचो, यजूषिं, साभानि’’[14]

दुर्गा के अर्थ में यह ऋग्वेद के रात्रीसूक्त, देव्याथर्वष्ठाीर्ष आदि स्थलों पर आया है।[15]

उपनिषद् आदि परवर्ती साहित्य में 'विद्या' पद तत्त्वज्ञान एवं 'ब्रह्मविद्या' के साथ प्रयुक्त है, जहाँ, विद्या के द्वारा अमरत्व एवं मोक्ष कथित है,[16] यहाँ 'विद्या' पद सामान्यत: 'तत्त्वज्ञान' के अर्थ में रूढ़ प्रतीत होता है एवं आत्मज्ञान से रहित समस्त ज्ञान को जो भोग एवं स्वर्गादि प्रदायक हैं, अविद्या, अपराविद्या आदि कहा गया है। मुण्डकोपनिषद् में यह स्पष्ट रूप से ज्ञानार्थ प्रयुक्त है, समस्त सांसारिक और मोक्षदायक ज्ञान को यहाँ अपराविद्या एवं पराविद्या के रूप में विभाजित किया गया है।[17] आचार्य ष्ठांकर ने भी अपने कठोपनिषद् भाष्य में विद्या को श्रेय एवं प्रेय के रूप में विभाजित किया है।[18]

विद्या पद के वैदिक वाङ्मय में प्रयोग पर ध्यान देने से विदित होता है कि यह लौकिक-अलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान के लिए प्रयुक्त हुआ है, सांसारिक भोग के अतिरिक्त यज्ञादि के द्वारा स्वर्गादि लोकों के कारणभूत वेदों को त्रयीविद्या कहा गया है, वहीं मोक्षदायक 'ब्रह्मज्ञान' को भी 'विद्या' पद से सम्बोधित किया गया है। 'ब्रह्म' की पराष्ठाक्ति होने एवं समस्त जगत् के बन्धन का हेतु होने से चिद्रूपा पराष्ठाक्ति (दुर्गा) को भी विद्या एवं ज्ञानावस्था में अविद्या (माया) दोनों प्रकार से सम्बोधित किया गया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'विद्या' से तात्पर्य किसी भी 'ज्ञान की समग्र प्रक्रिया', 'ज्ञान प्रविधि' या 'ज्ञान के साधन' (करणार्थ में) से है।

विद्या सम्प्रदान की प्रक्रिया-

बष्टदारण्यक ष्ठांकर भाष्य में समस्त विद्याओं को 'ब्रह्मविद्या' एवं 'संसारिविद्या' के रूप में विवेचित किया गया है।[19] इन दोनों धाराओं की विद्या प्राप्ति हेतु यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार प्रथम सोपान था जिसके अनन्तर विद्यार्थी को सावित्री प्राप्त होती थी और उसको वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता था।[20] यज्ञोपवीतकालातिक्रमण से 'व्रात्यत्व' होता है, व्रात्य का गुरु से विद्याग्रहण सम्भव नहीं था।[21] अध्ययन का प्रमुख स्थान गुरु या आचार्य का आश्रम था। छान्दोग्य में विद्यार्थी के लिए 'आचार्यकुलवासी' पद आया है,[22] विद्यार्थी को 'अन्तेवासी' भी कहा जाता था। सहपाठियों को 'सतीर्थ' कहते थे। सामान्यत: 12 वर्ष से 24 वर्ष की वय तक विद्याध्ययन काल माना जाता था।[23] ष्ठोष अवस्थाओं में भी व्यक्ति आचार्य के पास जाकर विद्या विषयक जिज्ञासा प्रकट कर सकता था, और गुरु की प्रसन्नता पर 'विद्या' प्राप्त कर सकता था। प्रष्ठनोपनिषद् में सुकेष्ठादि छ: विद्यार्थियों का पिप्पलाद के पास 'प्राणविद्या' प्राप्ति हेतु गमन,[24] दाध्यङ् आथर्वण के पास मधुविद्यार्थ अष्ठिवनी कुमारों का जाना,[25] 'संवर्ग विद्या' हेतु राजाजानश्रुति का रैक्व के पास गमन,[26] आरुणि का पुत्र ष्ठवेतकेतु के साथ प्रवाहण जैबलि के निकट 'पंचाग्निविद्या' के प्राप्ति हेतु गमन[27] और नारद का सनत् कुमार से 'पराविद्या' हेतु जिज्ञासा प्रकट करना इसका प्रमाण है।[28] छान्दोग्य में श्रेष्ठ आचार्य से विद्या ग्रहण करना उत्तम कहा गया है यही विद्या की सफलता हेतु अपेक्षित था जैसा 'आचार्यवान् पुरुषोवेद' से स्पष्ट है।[29] पिता का कर्त्तव्य है कि ज्येष्ठ पुत्र या योग्यष्ठिष्य को विद्या प्रदान करे। ष्ठिक्षक को अयोग्य छात्रों से बचना चाहिए और योग्यष्ठिष्य की कभी अवमानना नहीं करनी चाहिए।[30]

गुरुकुल में अन्तेवासी विद्यार्थियों का विद्या की पात्रतानुसार गुरु परीक्षण करता था और तदनुसार ही उन्हें विद्या प्रदान करता था, इसके लिए कोई घोषित निष्ठिचत नियम नहीं थे, तथापि संहितोपनिषद् में विद्यादान हेतु छ: प्रकार के विद्यार्थियों को 'ज्ञान-तीर्थ' कहा गया है।[31]

१. ब्रह्मचारी-

विधिअनुसार ब्रह्मचर्य रह कर सावित्री से महानाम्नी पर्यन्त अध्ययन व्रत का निर्वाह करने वाला। ब्रह्मचर्य को चार पदों वाला माना जाता है जिसमें गुरु-ष्ठिष्य परम्परा के समस्त पालनीय गुण समाविष्ट हैं-

'शिष्य वृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोतिय: शुचि:।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथम: पाद उच्यते।।1।।
यथा नित्यं गुरौ वृत्तिर्गुरुपत्नयां तथा चरेत्।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीय: पाद उच्यते।।2।।
आचार्येणात्मकृतं विज्ञानान्
ज्ञात्वा चार्थभावितोऽस्मीत्यनेन।
यं मन्यते तं प्रति दृष्ट बुद्धि:
स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पाद:।।3।।
आचार्या प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा चतुर्थ: पाद उच्यते।।4।।'[32]

२. धनदायी ३. मेधावी ४. श्रोत्रिय ५. प्रिय ६. प्रतिग्रहीता (एक विद्या देकर दूसरी विद्या पाने वाला)

७. संहितोपनिषद् में ही विद्यार्थ गुरुगृह गमन करने वाले विद्यार्थी के पालनीय

८. गुणों का उल्लेख है।

१. वित्ति (दक्षिणा देना) २. उपस्तव (निवेदन) ३. दम ४. श्रद्धा

५. संप्रश्न ६. अनाकाशीकरण (प्राप्त विद्या को गोपनीय रखकर अयोग्य व्यक्ति से रक्षा करना) ७. आचार्य सूश्रुषा ८. पर्णशायी, पयोभक्षी, विरासनसेवी आदि।[33]

संहितोपनिषद् ब्राह्मण से विद्या सम्प्रदान विषयक उस काल के नियमों का ज्ञान होता है, जहाँ विद्या का अपनी रक्षा हेतु ब्राह्मण के पास जाना कथित है-

''विद्या ह्वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि
तत्वं मां पालयस्व।''[34]

इसी प्रकार का मन्त्र यास्क कृत निरुक्त में भी प्राप्त होता है।[35] सायण ने भी वेदविद्या विषय चार मन्त्र 'ऋग्वेदभाष्य भाष्यभूमिका' में उद्धृत किया है, जो इस प्रकार हैं-

विद्याभिमानी देवता ब्राह्मण के निकट आकर बोली- हे उपदेष्टा ब्राह्मण! मुझे अनधिकारी को न देकर मेरी रक्षा करो, मैं निधि की तरह तुम्हारे पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्पादन करूँगी, मेरी और उपदेश देने वाले तुम्हारी जो निन्दा करे, निष्कपट और अभ्यासी न हो, तथा जो अशुचि हो उसके लिए मेरा उपदेश मत करो।[36क]

जो अविदथ (सत्य स्वरूप वेद वाक्य) द्वारा शिष्य के कर्णों को अमृतवत् विद्या (वेद मन्त्र) से उन्हें बिना दु:ख दिये पूर्ण करता है, ऐसे दयालु आचार्य को ही शिष्य अपना माता-पिता मानें और कभी भी उनके प्रति द्रोह न करे।[36ख]

अधमकोटि के छात्रों की निन्दा करते हुए श्रुति कहती है- जो अध्यापन काल में मन-वचन और कर्म से गुरु का आदर नहीं करते, ऐसे वे अधम शिष्य गुरु की कृपा के योग्य नहीं होते, जैसे वे गुरु के प्रति उपेक्षित होते हैं, वैसे ही उनके द्वारा दिया गया वेदोपदेश भी फलवान नहीं होता।[36ग] अन्त में विद्या ने आचार्य से निवेदन करते हुए कहा- हे आचार्य! जिसे तुम पवित्र, अप्रमत्त बुद्धिमान और ब्रह्मचर्य से युक्त योग्य शिष्य मानो जो तुमसे द्रोह करने वाला न हो उसी के प्रति मेरा उपदेश करो।[36घ]

इस प्रकार विद्या सम्प्रदान के सन्दर्भ में पात्र-कुपात्र के विषय में गम्भीर चिन्तन वैदिक वाङ्मय में

दृष्टिगत होता है। अहंकारी चरित्र रहित और वे विद्यार्थी जिनमें विद्या ग्रहण और संरक्षण की क्षमता न हो सर्वथा निषिद्ध माने गये हैं। भले ही विद्या के साथ मर जाये पर कुपात्र को विद्यादान कदापि न करे, ऐसा ऋषियों का दृढ़मत था–

''विद्यया सार्द्धंम्रियेत्। न विद्यामूषरे वपेत्।''[37]

यहाँ 'ऊषर' शब्द से अयोग्य, बुद्धिरहित छात्र उक्त हैं। आचार्य विद्यार्थी की योग्यतानुसार उन्हें सामान्य विद्याएँ प्रदान करते थे, किन्तु विशिष्ट विद्याओं की प्राप्ति हेतु योग्यता के साथ कठोर तपश्चर्या, विद्याभिमानी देवता एवं गुरु की कृपा ही एक मात्र मार्ग था। धनयुक्त पृथिवी की प्राप्ति होने पर भी अयोग्य को विद्या नहीं देनी चाहिए।[38]

वैदिक काल में प्रदेय विद्याओं की एक सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होती है, जिनका संख्या और विषयानुसार वर्गीकरण दुष्कर है। इनमें से अधिकाधिक आज अविज्ञात हैं, जिनके नाम और सिद्धान्त प्राप्त होते हैं उनका भी गुरु शिष्य परम्परा का लोप हो जाने से प्रायोगिक विज्ञान आज अगम्य है। रसविद्या, विमानविद्या, दिव्यास्त्र विद्या जैसी विद्याएँ ऐसी हैं जिनका आज उसी प्रकार प्रयोग नहीं किया जा सकता। छान्दोग्य में नारद द्वारा अधीत 19 विद्याओं का उल्लेख है[39]–4 वेद, 6 वेदांग, इतिहास, पुराण, पितृविद्या (मानवशास्त्र), राशिविद्या (गणित), दैवविद्या (भौतिक भूगोल), निधिविद्या (खनिज विज्ञान), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या (प्राणीविज्ञान), वाकोवाक् (तर्कशास्त्र), एकायन (नीतिशास्त्र), क्षत्रविद्या (राजनीति एवं सैन्य विज्ञान), नक्षत्रविद्या (खगोल, ज्योतिष) सर्पदेवजनविद्या (विषनिवारक गारूणमन्त्र विज्ञान) एवं देवविद्या (देव शास्त्र का ज्ञान) वेदोत्तर काल में प्रमुख 14 विद्याओं के नाम प्राप्त होते हैं।[40]

इनके अतिरिक्त धनुर्विद्या, शस्त्रविद्या, आयुर्वेद, शिल्प विमान शास्त्रादि के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं।

आध्यात्मिक कोटि की विद्याओं का उपबंहण उपनिषदों में प्राप्त होता है[41], जैसे–मधु(क) दहर(ख), पंचाग्नि(ग),भूमविद्या(घ), शाण्डिल्य(ङ), संवर्ग(च), सप्तान्न(छ), उदगीथ(ज), मन्थ(झ), गायत्री(ञ), ब्रह्मविद्या(ट) आदि।[41]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक काल में विद्यानुराग एवं उसके महत्त्व के प्रति ऋषियों का विशेष आग्रह था। संहितोपनिषद् ब्राह्मण में 'विद्यादान' को अतिदान की संज्ञा देते हुए उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है–

'त्रीण्याहुरतिदानानि गाव: पृथ्वी सरस्वती।'[42]

विद्या ग्रहण करने के उपरान्त आचार्य को 'गुरुदक्षिणा' देना विद्या की सफलता हेतु आवश्यक माना जाता था।

सन्दर्भ–

1. काठक संहिता–4.25.21
2. मनुस्मृति, 2.7., 12.94,
3. अष्टाध्यायी–3.3.99
4. ''विदन्तिधर्मार्थकाममोक्षान् आभिरितिविद्या''।
5. वाचस्पत्यम् षष्ठोभाग: पृष्ठ-4902

6. ऋग्वेद संहिता-विद्याम्-2.27.5। विद्याम-तत्रैव प्रथममण्डले-
   4.3, 165.15, 166.15, 197.15, 168.10, 169.8, 171.6, 173.13, 174.
   10, 190.8, षष्ठमण्डले-25.9, अष्टमे-24.8, 50.9 नवमे-22.13, 89.17।
7. ऋग्वेद 1.50 सूक्तानन्तरा
8. ष्ठु. यजु.-40.11
9. तै.सं.-2.1.2.8., तत्रैव-5.1.7.2.।
10. का. सं.-19.7.1, 9.16, 28.5, मैत्रायणी सं.-4.1.2, 3.1.8,
11. अथर्ववेद-11.7.10, 11.8.23
12. ष्ठातपथ ब्राह्मण-1.4.3
13. तत्रैव
14. तत्रैव
15. ऋग्वेद-रात्रीसूक्त। देव्याथर्वष्ठीर्ष-4
16. तै.उ.-3.9, केनोपनिषद् 2.4, कठोपनिषद् 1.2.4
17. मुण्डकोपनिषद्-1.1.1
18. कठोपनिषद्-1.2.2.
19. तदाब्रह्मविद्या संसारिविद्या च स्यात्।' बष्ठ्भा. 1.4.ष्ठांकरभाष्य
20. संस्कार ग्रन्थमाला (अष्टमपुष्प) पष्ट-2, सम्पूर्णानन्द सं. वि.वि. प्रकाष्ठित।
21. तत्रैव
22. छा.उ.-2.2.3.1
23. तत्रैव-6.1.2
24. प्रष्ठनोपनिषद-1.1
25. बष्ठ्भा.-2.5.16
26. छा.उ.-4.1
27. बष्ठ्भा.-6.2.4.
28. छा.उ.-7.1
29. छा.उ.-6.14.2
30. तत्रैव-3.19
31. संहितोपनिषद् ब्राह्मण-3.11
32. संस्कार ग्रन्थमाला (अष्टमपुष्प) पष्ट-14-15
33. संहितोपनिषद् ब्राह्मण-3.20
34. तत्रैव-3.9
35. निरुक्त-2.4
36 (क) विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा ष्ठोवधिष्टेऽहमस्मि।
   असूयकायानष्ठावेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्।।
   (ख) य आ तष्ठात्त्य वितथेन कर्णावदु:खं कुर्वन्नमष्ठं संप्रयच्छन्।
   तं मन्यते पितरं मातरं च तस्मै न द्रह्येत् कतमच्चनाह।।

(ग) अध्यापिता ये गुरूं नाद्रियन्ते विप्रा वाचामनसा कर्मणा वा।
तथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत्।।

(घ) यमेव विद्याः ष्ठुचिम प्रमत्तम मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।
यस्ते न दुह्योत् कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्।।
(सायण ऋग्वेद भाष्यभूमिका)

37. सं. उ. ब्रा.-3.10
38. तत्रैव, 3.11.5-6,
39. छा. उ.-7.1.2
40. अंगानिवेदाष्ठचत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मष्ठास्त्रं पुराणं च विद्याह्येता चतुर्दष्ठाः।। वि.पु., 3.6.27,।।
41. (क) 'मधुविद्या'-छा.उ.-3.1.1, (ख) 'दहर'-छा.उ. 8.1.1,
(ग) 'पंचाग्नि'-बष्ठ्आ.-6.2, (घ) 'भूम'-छा.उ.-7.1
(ङ) 'ष्ठाण्डिल्य'- छा.उ.-3.14(च) 'संवर्ग'-छा.उ. 4.1.6
(छ) 'सप्तान्न'- बष्ठ्आ.-5.1 (ज) 'उद्गीथ'-माण्डुक्योपनिषद्-1.1
(झ) 'मन्थ'-बष्ठ्आ.-6.3 (ञ) 'गायत्री'-बष्ठ्आ.-5.14,
(ट) 'ब्रह्म-बष्ठ्आ.3.1'
42. सं.उ.ब्रा.-4.12

वैदिक युगीन विदथ : एक समीक्षा

lcks/k dqekj feJ
iwoZ Nk=&ikphu bfrgkl iqjkrÙo ,oa
laLd`fr foHkkx
egkjk.kk izrki LukrdksÙkj egkfo|ky;] tqxy /kkSM+] xksj[kiqj

किसी भी उदीयमान समाज के सुव्यवस्थित संचालन हेतु लोक संस्थाओं का होना एक स्वाभाविक एवं महत्त्वपूर्ण आवष्ठयकता होती है। विष्ठव की समस्त सभ्यताओं के आरम्भिक चरणों में ऐसी लोक संस्थाओं का अभ्युदय दष्टिगोचर होता है। सुमेर की जन-सभाएँ, यूनान की ब्यूल तथा अगोरा और भारत की वैदिक कालीन सभा, समिति व विदथ ऐसी ही प्रारम्भिक लोक संस्थाएँ थीं। प्राय: प्राचीन भारतीय राज ष्ठासन पर प्रकाष्ठा डालने वाले कुछ पाष्ठचात्य इतिहासकारों[1] की धारणा थी कि प्राचीन भारत में लोकमत तथा लोक संस्थाओं का कोई महत्त्व नहीं था तथा किसी भी प्रकार की कोई लोक संस्था विद्यमान नहीं थी। परिणामत: भारत में प्रारम्भ से ही निरंकुष्ठा राजतन्त्र अस्तित्व में था। इन पाष्ठचात्य इतिहासकारों के मतों का खण्डन के.पी. जायसवाल[2], यू.एन.घोषाल[3], ए.एस.अल्टेकर[4] तथा आर.एस.ष्ठार्मा[5] प्रभष्ति विद्वानों ने अपने अथक ष्ठाोध कार्यों के द्वारा किया। इतना ही नहीं इन विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय में वर्णित अनेक प्रकार की लोकतांत्रिक संस्थाओं की ओर भी इतिहास जगत् का ध्यानाकर्षण किया है।

प्राचीन भारतीय जनसमितियों के अध्ययन का प्रारम्भ भारतीय इतिहासकारों द्वारा वस्तुत: भारतीय संस्कष्ति एवं इतिहास के पाष्ठचात्य मूल्यांकनकर्ताओं विष्ठोषकर जेम्स मिल के इसी आरोप के सन्दर्भ में हुआ कि प्राचीन भारत में लोकतांत्रिक ष्ठासन व्यवस्था का अभाव था। यहाँ के निवासी न तो वैयक्तिक स्वतंत्रता का महत्त्व समझते थे, और न ही इन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था का ज्ञान था। यहाँ तक कि लोकतांत्रिक स्वष्ठासन की राष्ट्रीय क्षमता भी उनमें कभी नहीं रही। ऐतिहासिक अन्वेषणों के परिणामस्वरूप जब बुद्धकालीन गणतंत्रों का पता चला, पाणिनि और सिकन्दर के समय के पष्ठिचमोत्तर भारत के अनेक गणतंत्र जब प्रकाष्ठा में आये और उनके परवर्ती इतिहास की भी जानकारी हुई, तब जाकर समूचा इतिहास जगत् यह मानने को बाध्य हुआ कि लोकतांत्रिकता न केवल हमारे राजनीतिक जीवन की विष्ठोषता थी, अपितु भारतीय जीवन के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पक्ष भी उससे अनुप्राणित थे।

वैदिक कालीन प्रमुख लोक संस्थाओं में सभा, समिति, विदथ, गण और परिषद् आदि को परिगणित किया जा सकता है। सम्भवत: इन लोक संस्थाओं में विदथ सर्वाधिक प्राचीन संस्था थी। इसका अस्तित्व राज्यहीन जनजातीय समुदायों में ही आ गया होगा। इसके स्वरूप के विषय में अद्यतन अनेक मत-मतान्तर हैं, तथापि यह वैदिक कालीन सभा समिति की अपेक्षा कहीं अधिक प्राचीन जनसभा थी। यद्यपि कि सभा और समिति जैसी संस्थाओं के स्वरूप पर प्रकाष्ठा डालने के लिए अपेक्षाकष्ठ काफी कुछ लिखा गया है, परन्तु विदथ का स्वरूप तथा अन्य अधिकांष्ठा पक्ष आज भी अल्पज्ञात एवं अन्धकारपूर्ण हैं। फिर भी विदथ सभा तथा समिति से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थी। विदथ का महत्त्व इसी से आँका जा सकता है कि जहाँ ऋग्वेद में सभा का उल्लेख 8 बार, और समिति का 9 बार हुआ है, वहीं हम विदथ का उल्लेख 122 बार पाते हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद में सभा और समिति का उल्लेख क्रमष्ठा: 17 और 13 बार आया है जबकि विदथ का उल्लेख 22 बार हुआ है।

---

* iwoZ Nk=&ikphu bfrgkl iqjkrRo ,oa laLd`fr foHkkx] egkjk.kk izrki egkfo|ky;] tqxy /kkSM+] xksj[kiqj

यहाँ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि विदथ शब्द का उल्लेख परवर्ती संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों एवं आरण्यकों में भी अनेकत्र मिलता है। वैदिक साहित्य जहाँ विदथ के उल्लेखों से भरा पड़ा है–सभा और समिति का जिक्र कहीं–कहीं ही हुआ है। फिर जिस प्रकार ऋग्वेद में सभा और समिति का उल्लेख कम और अथर्ववेद में अपेक्षाकृत अधिक है, उसी प्रकार विदथ का उल्लेख ऋग्वेद में अधिक और अथर्ववेद में उसकी तुलना में कम है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संस्था के रूप में विदथ प्राक् ऋग्वैदिक काल में अधिक महत्त्वपूर्ण था तथा सभा और समिति को उत्तर वैदिक काल में प्रमुखता प्राप्त हुई।[6]

विदथ शब्द के तात्पर्य और व्याख्या पर भिन्न–भिन्न इतिहासकारों के अपने अलग–अलग मत हैं।[7] वस्तुत: विदथ शब्द की निष्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है जिसका अर्थ क्रमश: जानना, धारण करना अथवा होना है।[8] राथ के अनुसार विदथ शब्द का प्रारम्भिक तात्पर्य 'व्यवस्था' से था जो बाद में चलकर 'व्यवस्था स्थापित करने वाली संस्था' के रूप में परिवर्तित हो गया।[9] राथ के अनुसार अंतिम रूप से विदथ एक ऐसी संस्था के रूप में विकसित हुआ जो धार्मिक अथवा सैनिक अथवा लौकिक उद्देश्यों की पूर्ति करती थी।[10] लुड़विग के अनुसार विदथ एक प्रकार की विशिष्ट संस्था थी जो कि सामान्य जनों की संस्था न होकर 'मघवाजनों' एवं ब्राह्मणों की संस्था थी। जिमर[11] के मतानुसार विदथ समिति की तुलना में एक छोटी संस्था थी। ओल्डेनबर्ग[12] ने विदथ को 'यज्ञ' का पर्यायवाची स्वीकार किया है। ध्यातव्य है कि पूर्व में ओल्डेनबर्ग ने विदथ का अर्थ 'धर्मविधि' बताया था। गोल्डेनर[13] महोदय ने विदथ का प्रारम्भिक अर्थ 'ज्ञान' माना है। वे विदथ को विद् धातु से व्युत्पन्न स्वीकार करते हैं तथा इसका विकसित अर्थ 'यज्ञ' मानते हैं। इसी प्रकार ब्लूमफील्ड[14] ने विदथ को 'सदनम्' अथवा 'गृह' से समीकृत किया है।

भारतीय विचारकों एवं इतिहासकारों ने भी अपने–अपने स्तर पर विदथ के स्वरूप को स्पष्ट करने का सराहनीय प्रयास किया है। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने[15] अथर्ववेद का सन्दर्भ देते हुए विदथ के सन्दर्भ में कहा है कि यह पूर्ववैदिक आर्यों के जीवन के धार्मिक पक्ष को व्यवस्थित करने वाली संस्था थी।[16] साथ ही उनका मानना है कि विदथ सभा एवं समिति से प्राचीनतर संस्था थी और विदथ ही वैदिक आर्यों की वह मूलसभा थी, जिससे कालान्तर में सभा, समिति, गण, परिषद् तथा सेना आदि पृथक होकर विकसित हुए[17] क्योंकि विदथ का सम्बन्ध सामाजिक, सैनिक एवं धार्मिक गतिविधियों के साथ समान रूप से दिखाई देता है। डॉ. अनन्त सदाशिव अल्टेकर ने भी विदथ शब्द को विद् धातु से आविर्भूत माना है तथा इसे मूलत: धार्मिक अथवा यज्ञ से सम्बन्धित संस्था स्वीकार किया है। इनका मानना है कि यह एक बहुत बड़ी सभा थी जिसमें सम्भवत: सम्पूर्ण जन का प्रतिनिधित्व होता था।[18] इसी क्रम में प्रो. यू.एन. घोषाल निष्कर्ष रूप में कहते हैं कि विदथ से सम्बन्धित मत–मतान्तरों को दृष्टि में रखते हुए इसके स्वरूप का निर्धारण असम्भव है।[19]

प्रसिद्ध भारतीय विद्वान एवं दार्शनिक ''पाण्डुरंग वामन काणे'' ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' के तृतीय खण्ड में हमारा ध्यान ऋग्वेद के एक मंत्र की ओर आकर्षित किया है, जहाँ सोम से एक ऐसे पुत्र के लिये प्रार्थना की गयी है जो 'सादन्ध', 'विदध्य' और 'समेय' हो[20] इससे इतना परिलक्षित होता है कि विदथ, सभा की ही भाँति एक जनसंस्था थी, बावजूद इसके काणे महोदय भी विदथ के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करने में असमर्थता व्यक्त करते हैं।

जहाँ तक विदथ के स्वरूप, संगठन एवं कार्यों का सवाल है, प्रो. आर.एस. शर्मा ने इस दिशा में अधिक वैज्ञानिक ढंग से सराहनीय विचार प्रस्तुत किया है।[21] प्रो. शर्मा के अनुसार विदथ में महिलाओं की भागीदारी सभा तथा समितियों की तुलना में अधिक थी। सुविदित है कि सभा के सन्दर्भ में स्त्रियों का

उल्लेख केवल एक स्थान पर आया है[22] और वहाँ भी इस बात को लेकर पर्याप्त विवाद है कि 'सभावती' विष्ठोषण का प्रयोग स्त्री (योषा) के लिए हुआ है अथवा वाणी (वाक्) के लिए। समिति के साथ तो स्त्रियों का सम्बन्ध बिल्कुल भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। जबकि इसके विपरित ऋग्वेद, अथर्ववेद दोनों में मिलाकर कम से कम 7 ऐसे स्थल हैं जहाँ न केवल विदथ में स्त्रियों के उपस्थित होने का प्रसंग आया है, प्रत्युत उन्हें इसमें होने वाले वाद-विवाद में बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी करते हुए भी दर्शाया गया है। उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद के 10वें मण्डल में वर्णित है कि नववध को पतिगृह जाते समय यह आशीर्वाद दिया जाता था कि वह विदथ को अपने वश में कर सके। यथा-

''गृहान् गच्छ गृहपत्नीयथासो वसिनी त्वं विदथमा वदासिद:।''

(ऋग्वेद:-10.85.26)

पुन: ऋग्वेद में उल्लिखित है कि विदथ में ये अपेक्षा की जाती थी कि पत्नी, पति के साथ विदथ में वाद-विवाद में हिस्सा ले और बोले भी। यथा-

''एना पत्यातन्वं सं सृजस्वाधा जिव्रि विदथमा वदाथ:।''

(ऋग्वेद:- 10. 85. 27)

उपरोक्त दृष्टान्तों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री तथा पुरुष सम्मिलित रूप से विदथ को संगठित करते थे तथा उसमें समान रूप से सम्मिलित होकर अपने-अपने विचारों को अन्यान्य लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते थे।

प्रो. श्रमा ने विदथ की तुलना 'आइरोक्वोई'[23] से की है, जो सामान्यत: एक समान गोत्र के सभी बालिग पुरुष और महिला सदस्यों की ऐसी जनतांत्रिक सभा थी, जिसमें सभी का समान महत्त्व था।[24] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि विदथ का स्वरूप उन यूनानी, रोमन और जर्मनी आदि देष्ठों की जनसभाओं से बिल्कुल भिन्न था, जिनमें स्त्रियों को कोई स्थान नहीं दिया जाता था, जिनकी जानकारी हमें अभी तक प्राप्त है।

चूँकि विदथ का स्वरूप पूर्णत: लोकतांत्रिक था, अत: इसमें विचार-विमर्श किये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जनमानस इसमें ऊँची-ऊँची बातें करने की लालसा रखता था।[25] गृहस्वामी मृत्यु से निवारण के लिये प्रार्थना करता था, ताकि जीवित रहकर वह विदथ में बोल सके।[26] ऐसा प्रतीत होता है कि विदथ के विचार-विमर्श में बड़े-बुजुर्गों को ज्यादा महत्त्व दिया जाता था। यह एक ऐसी विष्ठोषता है जो समस्त आदिम सभ्यताओं में समान रूप से पायी जाती है। पुनश्च विचार-विमर्श का विषय क्या होता था, इस दिशा में ओल्डेनबर्ग[27] ने अपनी राय प्रस्तुत करते हुए बताया है कि विदथ का अर्थ वितरण से है। वैदिक साहित्य में भी इस अर्थ की सार्थकता दिखाने वाले कुछ तथ्य उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के एक अवतरण में विदथ में बुलाये गये लोगों को उस अवसर पर उपस्थित रहने को कहा गया है, जब प्रतिदिन जो कुछ भी उत्पादित किया जाता है, उसका सवितर द्वारा वितरण किया जा रहा है।[28] एक अन्य स्थल पर अग्नि का वर्णन विदथ में उत्पादनों के उदार वितरक के रूप में करते हुए कहा गया है कि-

''त्वं अग्ने राजा वरुणे...त्वं अर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वं अंशो विदथे देव भाजयु:।''

(ऋग्वेद-द्वितीयमण्डल)

द्रष्टव्य है कि उपज का वितरण प्रत्येक आदिम जनसमूहों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य होता था। वर्तमान समय तक भारत तथा अफ्रीका की कुछ आदिम जनजातियों में यह प्रथा मौजूद है कि समूह के एक व्यक्ति द्वारा किये गये समस्त आखटों पर केवल उसी व्यक्ति का नहीं, अपितु समूह के हर सदस्य का

अधिकार होता है और पूरा समूह समान रूप से उसका भक्षण करता है।[29] अत: हम नि:संकोच ऐसा अनुमान लगा सकते हैं कि विदथ में एकत्र हुए लोग खाद्य पदार्थों को मिल बाँट कर खाते थे।

ऋग्वेद में विदथ के जितने भी उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनमें सबसे बड़ी संख्या (लगभग 23 उल्लेख) ऐसे उल्लेखों की है जिनसे इस संस्था के सामरिक स्वरूप की होने का संकेत मिलता है। विदथ में शक्तिशाली वीरों के पराक्रम की चर्चा होती थी साथ ही साथ अग्नि की विजयदायिनी शक्ति का वर्णन भी किया जाता था।[30] विदथ में उपस्थित होने वाले वीरों (विदथेषुवीरा:) का उल्लेख ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में मिलता है। इसी प्रकार ऋग्वेद के प्राचीनतम् 6वें और 7वें मण्डल में अनेकत्र यज्ञ कामना की गयी है कि हम वीर पुत्रों से सम्पन्न होकर विदथ में जोर से बोलें। कदाचित् युद्ध में अतिशय उपयोगी होने के कारण ही बहुसंख्यक पुत्रों की कामना भी की जाती थी। उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद के विवाह सूक्त में नवविवाहिता वधू को 10 पुत्रों की माता बनने का आशीर्वाद दिया गया है।[31]

सम्भवत: आर्यों के इतिहास की प्रारम्भिक अवस्था में जनजातीय युद्धों का संचालन विदथ द्वारा ही होता था। ध्यातव्य है कि आदिम जनजातियाँ प्राय: ही पड़ोसी जनजातियों से संघर्षरत रहा करती थीं। पशुधन के लिये संघर्ष के संकेत ऋग्वेद में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। सम्भवत: युद्ध धर्नाजन का भी एक महत्त्वपूर्ण साधन रहा हो।

अब प्रश्न यह उठता है कि युद्ध की स्थिति में विदथ का नेतृत्व कौन करता था। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद के अनेक प्रसंगों के द्वारा इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इन्द्र को विदथ की शक्ति कहा गया है।[32] पूषन को विदथ का वीर कहा गया है और अग्नि की इच्छा का वर्णन विदथ में उपस्थित अधिराट की इच्छा के रूप में किया गया है।[33] स्पष्टत: ये दैवी नेता मानवीय नेताओं के ही प्रतिबिम्ब थे। अब नेता की नियुक्ति कैसे होती थी यह सुनिश्चित करना अपेक्षाकृत कठिन है तथापि दो उल्लेखों से प्रकट होता है कि अग्नि, जिसे अक्सर पुरोहित कहा गया है, विदथ में निर्वाचित हुआ था। ऋग्वेद के एक अवतरण के अनुसार अग्नि, जो सभापूरक होतृपुरोहित है, यज्ञस्थल पर छोटे-बड़े सभी के द्वारा समान रूप से निर्वाचित होता है। यथा-

''मेघाकारं विदथस्य प्रसादनमग्नि होतारं परिभूतमं मतिम्।
तमिदर्भे हविष्यासमानमित्तभिन्महे वयृते नान्यं त्वत्।।''

(ऋग्वेद-10/91.8)

ऋग्वेद में ही एक अन्य जगह उद्धृत है कि- समस्त लोगों की सहमति से ही अग्नि को पुरोहित चुना जाता था। यथा-

''त्वामिदत्र वयृते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधस:।''

(ऋग्वेद-10/91.9)

यह असम्भव नहीं है कि ऋग्वेदीय समाज की प्रारम्भिक स्थिति में निर्वाचित प्रधान युद्ध और शान्ति दोनों ही परिस्थितियों में मिस्र के फराओं के समान नेतृत्व का कार्य करता रहा हो, तथा प्रधान योद्धा एवं पुरोहित दोनों की भूमिका का निर्वाह करता रहा हो। किन्तु क्रमश: पुरोहित और युद्ध नेता के कार्यक्षेत्र विभक्त हुए होंगे, क्योंकि दोनों कार्यों के लिये पृथक-पृथक योग्यताएँ अपेक्षित थीं।

विदथ के सैनिक स्वरूप का निर्देशन करने वाले उल्लेखों के बाद सबसे बड़ी संख्या इस शब्द के ऐसे उल्लेखों की है जिनसे इसका धार्मिक स्वरूप उजागर होता है। वेदों के भाष्यकार सायण को इसका धार्मिक पक्ष इतना प्रबल और व्यापक प्रतीत हुआ कि उन्होंने विदथ शब्द का अर्थ ही यज्ञ मान लिया।

परन्तु सायण के आधार पर वैदिक अवतरणों में विदथ के सभी उल्लेखों को यज्ञ का पर्याय मानना उतना ही अधिक अनुचित होगा जितना कि यास्क के आधार पर समिति को युद्ध का समानार्थी मानना।[34] विदथ को यज्ञ का पर्याय मानना ऋग्वेद की कुछेक ऋचाओं के सन्दर्भ में भले ही ठीक हो, किन्तु ऐसी ऋचाओं में जिनमें विदथ और यज्ञ शब्दों का प्रयोग दो अलग-अलग अर्थों में और स्वतंत्र रूप में हुआ है, वह तर्कसंगत नहीं लगता।

उदाहरण स्वरूप- ऋग्वेद का एक श्लोक है-

प्रद्यवा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा
महि स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा!

इस श्लोक में हमारे मनीषियों द्वारा इन्द्र और वरुण का आह्वान कर कहा गया है कि-हे देवो, विदथों में हमारा यज्ञ सुन्दर और सफल हो। विदथ और यज्ञ का अन्तर स्पष्ट करने वाली इस तरह की अनेक अन्य ऋचाएँ भी वैदिक वाङ्मय में अनेकत्र मिलती हैं।

इसी प्रकार के अन्य अनेक श्लोकों के माध्यम से विदथ के अन्यन्य धार्मिक पक्ष उजागर होते हैं, परन्तु कोई भी ऐसा प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो पाता जिसके आधार पर हम निश्चयात्मक रूप से विदथ को एक धार्मिक संस्था के रूप में स्थापित कर सकें।

इस प्रकार उपलब्ध उपरोक्त सन्दर्भों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि विदथ भारतीय आर्यों की प्राचीनतम जनसभा थी, जिसमें स्त्री-पुरुष, दोनों ही सम्मिलित रूप में आर्थिक, सामाजिक, सामरिक एवं धार्मिक सभी प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते थे। यह संस्था आदिम समाज की जरूरतों को पूरी करती थी। इस समाज में श्रम विभाजन का, या महिलाओं पर पुरुषों के आधिपत्य का चलन नहीं था, और यह सम्भवतः मिलजुल कर उपज का उपभोग करती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि विदथ प्रणाली की आधारशिला सहकारिता की भावना थी। स्त्री-पुरुष का भेद बरते बिना इसमें सम्मिलित लोग साथ-साथ लड़ते, साथ-साथ गाते, साथ-साथ प्रार्थना करते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ विचार-विमर्श किया करते थे। विदथ किस हद तक शासन क्षेत्र का काम करती थी, यह कहना कठिन है। इस सन्दर्भ के आन्तरिक साक्ष्य अपने आपमें इतने छिटपुट तथा बिखरे हैं कि इनके सहारे इस समस्या का समाधान असम्भव न सही पर अत्यन्त श्रमसाध्य व दुष्कर है। कालान्तर में विदथ का अस्तित्व जाता रहा तथा उसके स्थान पर सभा और समिति जैसी संस्थाएँ समाज में प्रतिष्ठित हुईं।

विदथ के सन्दर्भ में हमें किसी भी निश्चित मत पर पहुँचने के लिये आगे और अधिक अनुसन्धान, श्रम तथा अन्वेषण की आवश्यकता है। जिसके द्वारा इसके स्वरूप तथा कार्यप्रणाली का ठीक-ठीक ज्ञान हो सके।

सन्दर्भ-

1. विन्सेन्ट स्मिथ (अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया) तथा जेम्स मिल, (कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया) सन् 1904
2. हिन्दू पॉलिटी, सन् 1924 ई.
3. हिस्ट्री आफ हिन्दू पब्लिक लाइफ, भाग-1
4. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति,
5. प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ
6. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृष्ट-91

7. यू.एन. घोषाल, हिस्ट्री ऑफ हिन्दू पब्लिक लाइफ, भाग-1 पष्ट-28
8. ''विद् ज्ञाने, विद् चारणो, विद्लष्टाभे, विद् सत्तायम्'' (ष्ठाब्दकल्पद्रुम, ८, पष्ट-286)
9. वैदिक इन्डेक्स, भाग-2, पष्ट-296
10. ऋग्वेद-1.60.3/2.4.8, वैदिक इन्डेक्स भाग-2, पष्ट-296
11. वैदिक इन्डेक्स, भाग-2 पष्ट-296-299
12. सेक्रेड बुक ऑफ द इस्ट, पष्ट-46
13. तत्रैव, पष्ट-147
14. जर्नल आफ ओरिएण्टल सोसाइटी, पष्ट-12-19
15. हिन्दू पॉलिटी, पष्ट-20
16. अथर्ववेद-7.384
17. 'दिवो नपाता विदथस्य धिमीः धीराः'।

ऋग्वेद-3.38.5

18. डॉ. ए.एस. अल्टेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन एनष्ठिाएन्ट इण्डिया, पष्ट-141
19. यू. एन. घोषाल, स्टडी इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पष्ट-351-52
20. पॉडुरंगन वामन काणे, धर्मष्ठास्त्र का इतिहास, भाग-3, पष्ट-92
21. रामष्ठारण ष्ठार्मा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पष्ट- 63-80
22. ऋग्वेद-1.167.3
23. न्यूयार्क में निवास करने वाली 5 अथवा 6 आदिम जातियों का संघ।
24. प्रो. आर.एस.ष्ठार्मा, द ओरिजिन ऑफ द फेमिली, प्राईवेट प्रापर्टी एण्ड द स्टेट, पष्ट-126
25. अथर्ववेद-13.3.24
26. अथर्ववेद-12.2.30
27. सेक्रेड बुक ऑफ द इस्ट, भाग-17, पष्ट-26
28. ''यदद्यदेवः सविता सुवाति स्यामस्य रत्निनो विभागे''।

(ऋग्वेद-7.40.1)

29. अफ्रीका महाद्वीप के भिन्न-भिन्न भू-भागों में पायी जाने वाली विभिन्न जनजातियाँ यथा-मसाई, पिग्मी, कोरा, बुष्ठामैन तथा ओकाबांगो के डेल्टाई क्षेत्र में रहने वाली अनेक जंगली जातियाँ आज भी इसी पद्धति के सहारे अपना जीवन यापन कर रही हैं। इन जनजाति समूहों का यदि कोई अकेला सदस्य, भले ही अपने दम पर कोई ष्ठिकार करता हो, परन्तु उस ष्ठिकार को पूरा समूह मिल बाँट कर ही खाता है।

(स्रोतः- National Geography
चैनल पर प्रसारित कार्यक्रम
Wildest Africa से)

30. ऋग्वेद-6.8.6
31. ऋग्वेद-10/85
32. ''पतिं दक्षस्य विदथस्य''। ऋ.-1.56.2
33. ऋग्वेद-7.38.8, 7.36.8
34. बन्द्योपाध्याय, डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू पॉलिटी एण्ड पालिटिकल थिअरीज, पष्ट-118

स्कन्दोपासनाः आभिलेखिक सन्दर्भ में

ykd'k dekj itkifr

प्राचीन भारतीय इतिहास के शोध एवं इस काल-खण्ड के उन तथ्यों जिन पर साहित्यिक स्त्रोत मौन हो जाते हैं, अर्थात् जब शाब्दी परम्परा से उस काल-खण्ड पर प्रकाश नहीं पड़ता तब ऐसे समय में वहाँ से प्राप्त पदार्थी परम्परा (अभिलेख, मुद्राएँ, स्मारक इत्यादि) विशेषतः अभिलेखों का महत्त्व बढ़ जाता है। ये इस काल-खण्ड के सबसे प्रामाणिक स्त्रोत माने जाते हैं; क्योंकि ये अभिलेख तत्कालीन समय के राजवंशों की वंशावली, शासन व्यवस्था, विजय-गाथा, अर्थव्यवस्था, समाज एवं धर्म पर भी प्रकाश डालते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र द्वारा स्कन्द की उपासना के प्रमाण को अभिलेखों के सन्दर्भ में व्याख्यायित करने का एक प्रयास किया गया है कि कैसे एक अनार्य देवता आर्य देव मण्डल में सम्मिलित किया गया। एक अनार्य देवता का आर्यदेव मण्डल में सम्मिलित होना उसकी लोकप्रियता का ही परिचायक है।

प्राचीन भारत के कतिपय अभिलेखों पर इस देवता के सन्दर्भ मिलते हैं जो इसकी लोक में प्रसिद्धि के जीवन्त प्रमाण हैं। ये प्रमाण इसके लोक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थिति की पुष्टि करते हैं जिनका विवरण निम्नवत् है-

अज्ञातरानी का नाणेघाट अभिलेख-

अब तक ज्ञात अभिलेखों में सर्वप्रथम 'स्कन्द' का उल्लेख इसी अभिलेख में हुआ है। वास्तव में यह अभिलेख पुणे जिले में जुन्नार के मार्ग में एक दर्रा है जो नाणेघाट के नाम से पुकारा जाता हैं, उसी दर्रे की दोनों दीवारों पर ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में अंकित है। इस लेख को अधिकांश विद्वान नागनिका के अभिलेख के नाम से पुकारते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो संदिग्ध भाव से ऐसा कहते हैं। परन्तु डॉ. पी.एल. गुप्त को इसके नागनिका के अभिलेख होने में पूर्ण सन्देह है, इसलिए इसे अज्ञातरानी के अभिलेख की संज्ञा दी है।[1]

यद्यपि काल कारण से यह अभिलेख इतना क्षतिग्रस्त है कि इसका समुचित पाठोद्धार सम्भव नहीं हो सका है। जो कुछ पढ़ा गया है उसमें विराम चिह्नों का सर्वथा अभाव है। इस कारण विद्वानों ने इस लेख की आरम्भिक पंक्तियों में जो ऐतिहासिक महत्त्व की हैं, वाक्यों की सीमा विविध प्रकार से निर्धारित कर अनुवाद और व्याख्या प्रस्तुत की है।

इस अभिलेख की प्रारम्भिक पंक्ति में जिसमें विविध देवताओं को नमस्कार किया गया है, उन देवताओं में कुमार (कार्तिकेय) का उल्लेख मिलता है। लेकिन इस पर विविध विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं-

बुह्लर ने प्रथम पंक्ति में अंकित प्रारम्भिक वाक्य का (जिसमें देवताओं को नमस्कार किया गया है) वेदसिरिस पर अनुमान किया है और रञो से दूसरे वाक्य का आरम्भ माना है। इस प्रकार उन्होंने 'नमो कुमारवरस वेदसिरिस' को एक वाक्य-खण्ड मानकर अनुवाद किया है- 'श्रेष्ठ राजकुमार वेदश्री को नमस्कार' किन्तु उनके इस अनुवाद-प्रस्तुति से असामान्य वाक्य-विन्यास का परिचय मिलता है। अतः अपने इस अनुवाद का औचित्य सिद्ध करने के लिए उन्होंने यह कल्पना प्रस्तुत की है- ऐसा जान पड़ता है कि इस बड़े अभिलेख में जिस रानी की चर्चा है, वह अपने पुत्र राजकुमार वेदिसिरि के अभिभावक के रूप में शासन कर रही होगी। यद्यपि वह (रानी) अभिलेख की प्रमुख व्यक्ति है तथापि 'श्रेष्ठ राजकुमार' वेदिसिरि का उल्लेख पंक्ति[2] में नमो शाब्द के साथ हुआ है और उनके प्रति वही आदर-भाव

* ioDrk&ikphu bfrgkl foHkkx] egkjk.kk irki egkfo|ky;] txy /kIM] xkj[kij

व्यक्त किया गया है जो आरम्भ के मंगलाचरण में देवताओं के प्रति दिखाया गया है। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि वह विष्ठिष्ट और मुख्य रूप से उच्चपद पर आसीन था।[3] किन्तु बुह्लर की यह बात समझ में आने वाली नहीं है कि ऐसे राजकुमार की जो अभी वयस्क भी नहीं है, इस प्रकार अभ्यर्थना की जायेगी। किसी राजकुमार की, उसके अवयस्क-काल में अंकित अभिलेख के आरम्भ में देवताओं की तरह अभ्यर्थना की गयी हो, ऐसा भारतीय अभिलेखकी में अन्यत्र अज्ञात है। माँ अपने बेटे की इस प्रकार अभ्यर्थना करेगी यह एक असम्भवित कल्पना है। उनकी यह धारणा और अनुवाद दोनों ही बुद्धिग्राह्य नहीं है। अतः सन्तलाल कटारे[4] ने बह्लर के इस वाक्य विन्यास तथा अनुवाद का समर्थन करते हुए यह मत प्रतिपादित किया है कि वेदिसिरि इस समय जीवित नहीं था। इसलिए उनकी अभ्यर्थना देवों की भाँति की गयी है, क्योंकि भारत में पितर की पूजा देवों की तरह ही होती है। किन्तु यह व्याख्या भी उतनी ही हास्यास्पद है। यद्यपि भारत में पितर पूजा दिवंगत पूर्वजों की होती है न कि अनुवंष्ठियों की। माता द्वारा किसी पुत्र को, चाहे वह कितना भी महान क्यों न हो पितर रूप में पूजा कल्पनातीत है।

रैप्सन ने वाक्य के आरम्भ के अनुमानित पाठ 'नमो प्रजापतिनों' की उपेक्षा कर इस वाक्य में नमो ष्ठाब्द को पूर्ववर्ती षष्ठी-विभक्तियुक्त संज्ञा के साथ ग्रहण किया है। इस प्रकार उनके मतानुसार मंगलाचरण वाला वाक्य कुमारवरस से पूर्व नमो पर समाप्त होता है और दूसरा वाक्य कुमारवरस से आरम्भ होता है। इस प्रकार वे बुह्लर द्वारा प्रस्तुत अनर्गल कल्पना का सहज निराकरण प्रस्तुत कर देते हैं। किन्तु रैप्सन द्वारा प्रस्तुत इस वाक्य-विन्यास के प्रति मीराष्ठी की प्रबल आपत्ति यह है कि समस्त प्राकष्ठ और संस्कष्ठ अभिलेखों में नमो ष्ठाब्द का प्रयोग देवताओं के नाम के पूर्व होता है बाद में नहीं। इसलिए इस अभिलेख में भी नमो का सम्बन्ध आगे वाले ष्ठाब्दों से ही जोड़ा जाना चाहिए। इस सीमा तक वे बुह्लर के वाक्य-विन्यास का समर्थन करते हैं। बुह्लर से मीराष्ठी का मतभेद इतना ही है कि वे वाक्य का अन्त वेदिसिरि पर नहीं, कुमारवरस पर मानते हैं और कुमारवरस का तात्पर्य श्रेष्ठ कुमार नहीं ग्रहण करते। उनके अनुसार इसका तात्पर्य कार्तिकेय से है, जो तर्कसंगत, बुद्धिसंगत और समीचीन प्रतीत होता है।

इस अभिलेख में कुमार (कार्तिकेय) देव का उल्लेख जो विविध देवताओं के साथ स्तुति के रूप में किया गया है जो कार्तिकेय देव की लोकप्रियता का प्रथम पुरातात्त्विक प्रमाण है कि इस समय कार्तिकेय एक अनार्य कोटि के देव से उठकर एक आर्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे।

वीरपुरुषदत्त का नागार्जुनीकोण्डा अभिलेख-

यह अभिलेख नागार्जुनीकोण्डा पर्वत पर स्थित ध्वस्त स्तूप से प्राप्त आयक स्तम्भ (संख्या बी 5) पर अंकित है। इस अभिलेख में यह वर्णित है कि इक्ष्वाकुवंष्ठी-नरेष्ठा श्री वीरपुरुषदत्त की पत्नी वप्पीश्री ने नागार्जुनीकोण्डा स्थित स्तूप की मरम्मत करायी और ष्ठैल स्तम्भ स्थापित किया था। इसके साथ ही इस अभिलेख में वीरपुरुष दत्त द्वारा अपनी ममेरी-फुफेरी बहनों के साथ विवाह का उल्लेख है। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि वप्पीश्री के ष्ठवसुर वीरपुरुषदत्त के पिता श्री चान्तमूल 'स्कन्द-कार्तिकेय' के भक्त थे और उन्होंने अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, वाजपेय और अष्ठवमेध नामक वैदिक यज्ञ किये थे। एक ही परिवार में बौद्ध और ब्राह्मण धर्म (स्कन्द कार्तिकेय) दोनों समान रूप से प्रतिष्ठित था और एक ही व्यक्ति एक से अधिक धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति निष्ठा रखता था।[5]

इस अभिलेख में श्री चान्तमूल का स्कन्द-कार्तिकेय का भक्त होना, यह प्रमाणित करता है कि इस समय यह देव समाज में एक लोकप्रिय देवता के रूप में प्रतिष्ठित रहा होगा।

श्रीधरवर्मा का कानाखेड़ा पाषाण लेख-

यह लेख जॉन मार्शल के एक सहयोगी ने मध्य भारत में साँची के निकट स्थित कानाखेड़ा नामक ग्राम से प्राप्त किया था। यह एक पाषाण पर उत्कीर्ण है जो एक दीवार में लगा हुआ था। यह लेख 6 पंक्तियों वाला है। इसके कुछ अक्षर मिट गए हैं और कुछ अपठनीय हो गए हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। यह गद्य में प्रारम्भ होता है परन्तु इसके अन्त में एक श्लोक दिया गया है जो शार्दूल विक्रीडित छन्द में है। लेख नन्द नामक शक के पुत्र महादण्डनायक श्रीधरवर्मा के शासन काल का है जो कार्तिकेय का उपासक था।[6]

प्रस्तुत लेख में दो तिथियाँ दी गयी हैं। पहली तिथि दूसरी-तीसरी पंक्ति में तथा दूसरी तिथि लेख के अन्त में लिखी है। परन्तु इसके पाठ और इसके सम्वत् की पहचान के विषय में बड़ा वाद-विवाद है। बनर्जी एवं सरकार ने इसे शक सम्वत् की 201 तिथि बताया है, एन.जी. मजूमदार ने शक सम्वत् का 241वाँ वर्ष तथा मिराशी ने कल्चुरी-चेदि सम्वत् का 102 वर्ष। लेकिन पर्याप्त वाद-विवाद के बाद इसकी तिथि 102 है जो शक संवत् का वर्ष होना चाहिए, कल्चुरि-चेदि सम्वत् का नहीं। इस प्रकार इस लेख की तिथि 180 ई. मानकर श्रीधर वर्मा का शासन काल 167-193 ई. में रखा जा सकता है। स्पष्टतः उसने रुद्रदामा प्रथम के बाद शक राज्य में उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाकर अपनी शक्ति बढ़ायी होगी।[7]

श्रीधर वर्मा कार्तिकेय का उपासक था जो पहले दण्डनायक था बाद में वह 'महाक्षत्रप' हो गया। इस अभिलेख का धार्मिक महत्त्व यह है कि यह शकों द्वारा भारतीय धर्मों को आत्मसात करने का प्रामाणिक स्रोत है जो यह संकेतित करता है कि द्वितीय शताब्दी ईस्वी में स्कन्द-कार्तिकेय एक लोकप्रिय देवता हो गया था तथा वह अब विदेशी जातियों में भी उपास्य हो गया था।

कुमारगुप्त प्रथम का बिल्सड़ पाषाण स्तम्भ लेख-

यह लेख कनिंघम[8] महोदय को 1877-78 ई. में एटा जिले में अलीगंज तहसील के अन्तर्गत स्थित बिल्सड़ या बिल्सण्ड नामक गाँव से जो अलीगंज कस्बे से 4 मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है, से प्राप्त हुआ। इस गाँव में तीन टीले हैं जिसमें बिल्सड़ पुवायाँ नामक टीले के दक्षिण-पश्चिमी कोने में लाल बलुए पाषाण के 4 एकाश्म स्तम्भ मिलते है-दो गोल और दो चौकोर। इनमें दोनों गोल स्तम्भों पर एक ही लेख की दो प्रतियाँ उत्कीर्ण मिली हैं, लेकिन इनमें एक में कुछ छोटी 16 पंक्तियाँ हैं और दूसरे में कुछ बड़ी 13 पंक्तियाँ। 16 पंक्तियों वाला लेख पूर्णतः अपठ्य हो गया है परन्तु इसके जो भी शब्द बच गये हैं उनसे दूसरे लेख को, जो 13 पंक्तियों वाला है उसे पढ़ने में कुछ सहायता मिल जाती है। इस प्रकार दो स्तम्भों पर एक ही लेख की दो प्रतियाँ यशोधर्मा के दो स्तम्भों पर भी मिलती है। लेकिन यशोधर्मा के स्तम्भ स्वतंत्र जयस्तम्भ थे, किसी भवन के अंग नहीं, जबकि कुमारगुप्त प्रथम कालीन थे लेखांकित स्तम्भ स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मन्दिर के, जो अब नष्ट हो चुका है, अंग रूप में थे।[9]

इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है और यह गद्य-पद्य मिश्रित है। लेख में तिथि शब्दों में दी गयी है- कुमारगुप्त प्रथम के शासन का वर्ष छियानबे अर्थात् गुप्त संवत् का वर्ष 961 मास और दिन अनुल्लिखित है। यह एक शैव लेख है, जिसका उद्देश्य स्वामी-महासेन (कार्तिकेय) के मन्दिर में ध्रुवशर्मा नामक व्यक्ति द्वारा एक प्रतोली के निर्माण, एक सत्र की स्थापना एवं इन अभिलेखों वाले स्तम्भों की स्थापना करवाये जाने का उल्लेख करना है।[10]

इस अभिलेख में स्कन्द कार्तिकेय का उल्लेख पंक्ति 7,8 एवं 9 में किया गया है कि गुप्त संवत् 96 अर्थात् 319़96=415 ई. में भगवान् स्वामी महासेन मन्दिर में जिनकी अद्भुत मूर्ति तीनों लोकों के प्रकाशपुंज से उत्पन्न हुई है, जो ब्रह्मण्यदेव है जो.........में निवास करते हैं........कृतयुग के आचार सद्मार्ग

के अनुयायी (एवं).....सभा में आदर के पात्र ध्रुवष्ठार्मा द्वारा माता.....यह महान् कार्य सम्पन्न हुआ है।[11]

अभिलेख में उल्लिखित ब्रह्मण्यदेव, कार्तिकेय का ही एक नाम है। कार्तिकेय स्कन्द, महासेन, विष्ठाख, कुमार, नैगमेष तथा ब्रह्मण्यदेव आदि नामों से भी पुकारे जाते थे। पतंजलि ने विष्ठाख और स्कन्द की मूर्तियाँ बनाये जाने का उल्लेख किया है। महाभारत के स्कन्दोत्पत्तिपर्वाध्याय में स्कन्द के जन्म की कथा है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' की विषयवस्तु ही यही है। यौधेयजन कार्तिकेय को ब्रह्मण्य तथा कुमार[12] नामों से पूजते थे। एक भीटा मुहर में महाराज गौतमीपुत्र वष्ठध्वज द्वारा अपना राज्य महेष्ठवर सेनापति को अर्पित कर दिये जाने का उल्लेख है।[13]

यह अभिलेख कुमार गुप्त प्रथम का सबसे पुराना अभिलेख है। धार्मिक इतिहास की दष्टि से यह अत्यन्त महत्त्व का है। इसमें ध्रुव ष्ठार्मा नामक व्यक्ति स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मन्दिर में कुछ निर्माण कार्यो का उल्लेख करता है। यह द्रष्टव्य है कि कुमारगुप्त प्रथम परमभागवत् उपाधिधारी होने के बावजूद कार्तिकेय की उपासना में रुचि रखता था। उसने अपने पुत्र का नाम 'स्कन्द' रखा था जो कार्तिकेय का ही दूसरा नाम है, कार्तिकेय प्रकार की सुवर्ण मुद्राएं चलायी थी तथा मध्यदेष्ठीय रजत मुद्राओं पर गरुड़ के स्थान पर मयूर का अंकन करवाया था।[14]

कुमारगुप्त प्रथम का तिथिविहिन बिहार पाषाण स्तम्भ लेख-

यह स्तम्भ लेख बिहार रूप के पटना जिले का बिहार या बिहारष्ठारीफ नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। लाल बलुए पत्थर से निर्मित यह स्तम्भ उन्नीसवीं ष्ठाती में टूटी हुई हालत में बिहार ष्ठारीफ के प्राचीन दुर्ग के उत्तरी प्रवेष्ठाद्वार के सामने मिला था। वहाँ से उसे हटा कर उसी द्वार के पष्ठिचम में उल्टा गाड़ दिया गया जिससे इसका उपरवाला भाग जमीन में दब गया और निचला भाग ऊपर चला गया। वहाँ पर यह कनिंघम महोदय को भूमि पर गिरा हुआ मिला था। तदुपरान्त 1871 ई. में इसे बिहार ष्ठारीफ के एक मजिस्ट्रेट श्री ब्रोडले ने इसी नगर की कचहरी के सामने एक ईंटों से निर्मित आधार पर पुनः उल्टा ही स्थापित करवा दिया। आज भी यह उल्टी अवस्था में ही है।[15]

इस अभिलेख की नवीं पंक्ति में स्कन्द देवता के साथ मातष्काओं का उल्लेख होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह ष्ठाक्त और तान्त्रिक विचारधारा से प्रभावित ष्ठैव मत से सम्बन्धित था।[16] स्कन्द या स्वामी महासेन इस समय एक प्रमुख देव के रूप में स्थापित थे। जबकि मातष्काओं से यहाँ आष्ठाय स्पष्टतः सप्तमातष्काओं से है (ब्राह्मी माहेष्ठवरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा माहेन्द्री चैव वाराही चामुण्डा सप्तमातरः)। ये उन कष्तिकाओं को प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्हें स्कन्दकार्त्तिकेय की धाय माना गया है।[17]

आदित्यसेन का अफसढ़ अभिलेख-

अफसद या अफसढ़ जिसे जाफरपुर भी कहा जाता है सकरी नदी के दाहिने तट पर नवादा तहसील से 15 मील उत्तर-पूर्व में गया जिले में स्थित हैं जो बंगाल प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत आता था। यहाँ से सर्वप्रथम इस अभिलेख को मेजर मारखम किट्टो[18] द्वारा 1850 ई. में पाया गया तथा 1863 ई. में पहली बार जनरल कनिंघम द्वारा बंगाल एष्ठियाटिक सोसायटी की पत्रिका के पूरक के रूप में प्रकाष्ठित किया गया।[19] 1866ई. में डॉ. राजेन्द्र लाल मिश्र ने इस लेख का अपना पाठ तथा अनुवाद प्रकाष्ठित किया।[20] 1871ई. में कनिंघम ने इसे आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया में पुनः प्रकाष्ठित किया।[21] तत्पष्ठचात् फ्लीट ने इसे अपने कार्पस में स्थान दिया।

इस अभिलेख में भी स्कन्द देवता का उल्लेख मिलता है, लेकिन यहाँ कुमारगुप्त के गुणों की तुलना स्कन्द से की गयी है। इसमें उल्लिखित है कि जीवित गुप्त को युद्ध में अग्रणी श्रीकुमारगुप्त नामक एक

पुत्र उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार भगवान् हर (ष्ठिव) को मयूर-वाहन (कार्तिकेय) हुए थे। जिसने ईष्ठानवर्मा की सेना को क्षीर सागर की भाँति उसी प्रकार मथ डाला जिस प्रकार देवताओं एवं असुरों ने लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए क्षीर सागर को मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर मथा था।[22]

इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि इस समय तक स्कन्द देवता युद्ध के देवता के रूप में भारतीय समाज में प्रतिस्थापित हो चुके थे। तभी इस अभिलेख के लेखक ने कुमारगुप्त की तुलना ष्ठिवपुत्र स्कन्द से की है।

इस प्रकार उपरोक्त अभिलेखों में वर्णित स्कन्द देव के सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि जिस देवता का उद्भव यद्यपि एक जनजातीय या अनार्य देवता के रूप में हुआ। लेकिन धीरे-धीरे वह जनमानस में इतना लोकप्रिय हो गया कि उसे भी आर्यदेव मण्डल में समाहित कर लिया गया। जिसके प्रमाण हमें अज्ञातरानी के अभिलेख में विविध देवों के साथ उसके नाम का उल्लेख होने से सूचित होता है और यह भी कि प्रथम ष्ठाताब्दी ईस्वी तक यह देवता पूरी तरह से स्थापित हो गया था। तथापि इसकी प्रतिमाएँ भी बननी ष्ठुरू हो गयी थीं। ऐसे प्रमाण हमें यौधेय एवं कुषाण मुद्राओं पर उस देवता के विभिन्न रूपों से प्रकट होता है। यही नहीं उसकी लोकप्रियता इस कदर जन मानस में बढ़ी कि विदेष्ठियों के द्वारा भी उसे आत्मसात किया जाने लगा। यह इस देवता के लोकप्रिय होने के कारण ही था जिससे ष्ठाक क्षत्रपों द्वारा इसकी उपासना की जाने लगी। गुप्त राजा यद्यपि परम भागवत थे। लेकिन कुमारगुप्त इस कदर इसके गुणों की ओर आकष्ट हुआ कि उसने अपने पुत्र का नाम ही स्कन्दगुप्त रख दिया एवं मयूर आरूढ़ कार्तिकेय की मुद्राओं को भी जारी करवाया। उत्तर गुप्त नरेष्ठा कुमारगुप्त के गुणों की चर्चा भी स्कन्द देवता से की गयी तथा आदित्यसेन के अफसढ़ लेख में जीवितगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त की तुलना ष्ठिवपुत्र स्कन्द से की गयी है। यह इस देवता के लोकजीवन में ख्यात होने के ही प्रमाण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पी.एल.गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख खण्ड (1)2004 पष्ट संख्या-165
2. तत्रैव, पष्ट संख्या 170-171
3. तत्रैव, पष्ट संख्या 171
4. तत्रैव, पष्ट संख्या 171
5. तत्रैव, पष्ट संख्या 192-193
6. आर.डी. बनर्जी, इपिग्राफिया इण्डिका-16, पष्ट संख्या 232
7. प्राचीन भारतीय अभिलेख-संग्रह, पष्ट संख्या 353-354
8. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया- 11, पष्ट संख्या 19
9. श्रीराम गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, 1993, पष्ट संख्या, 131
10. तत्रैव, पष्ट संख्या 131
11. तत्रैव, पष्ट संख्या, 134
12. द्रष्टव्य, यौधेय सिक्कों का 'भगवतो स्वामिनो ब्रह्मण्यदेवस्य कुमारस्य' लेख

13. जे.एन. बनर्जी, पौराणिक एवं तांत्रिक रिलीजन, पष्ट संख्या 149
14. श्रीराम गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, 1993, पष्ट संख्या 136
15. तत्रैव, पष्ट संख्या, 196
16. तत्रैव, पष्ट संख्या, 198
17. तत्रैव, पष्ट संख्या, 201
18. क्लीट, कार्पस इंस्क्रिप्शान इण्डिकेरम, वैल्यूम III 1888, पष्ट 205, प्रो. के.डी. वाजपेयी, ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, 1992, पष्ट 206
19. जिल्द 32, पष्ट 330
20. जर्नल ऑफ बंगाल एष्शियाटिक सोसाइटी, खण्ड 32, पष्ट 3 व आगे
21. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ए रिव्यू, जिल्द 1, पष्ट 40इ
22. फ्लीट, कार्पस इंस्क्रिप्शान इण्डिकेरम, वॉल्यूम III 1888, पष्ट 206

कृषि उद्यमिता विकास एवं सरकारी योजनाएँ

डॉ. राजेश शुक्ल
वाणिज्य विभाग

उद्यमिता विकास कार्यक्रम से आशय किसी ऐसे कार्यक्रम से है जिसका उद्देश्य सम्भावित उद्यमियों की खोज करना, उनमें व्यावसायिक रुचि, जोखिम उठाने की क्षमता, रचनात्मक प्रवृत्ति की भावना विकसित करना तथा उन्हें सफलतापूर्वक अपना उपक्रम स्थापित करने में सक्रिय सहयोग प्रदान करना है। उद्यमिता विकास कार्यक्रम की प्रक्रिया मूलत: शिक्षण, प्रशिक्षण भौतिक साधनों की उपलब्धता, क्षेत्रीय विकास एवं उद्यमी के लिए व्यवसाय का एक स्वस्थ पर्यावरण तैयार करने पर बल देती है, ताकि उद्यमियों को निरन्तर आगे बढ़ने में मदद मिल सके।

कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार माना जाता है। वे कच्ची सामग्री के महत्त्वपूर्ण स्रोत तथा कई औद्योगिक उत्पादों विशेषत: उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि औजारों तथा अनेक प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग में हैं। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में उनका योगदान लगभग 22 प्रतिशत है। लगभग 65 से 70 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है।

भारत की विविध कृषि जलवायु भारी संख्या में उद्यान कृषि फसलों की संवृद्धि के लिए अत्यधिक अनुकूल है, जिनका 16075 मिलियन टन के उत्पादन के साथ देश के सकल फसलीकृत क्षेत्र में लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा है। भारत विश्व में फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। यह मसालों तथा रोपण फसलों जैसे चाय, काफी इत्यादि का भी अग्रणी उत्पादक, उपभोक्ता तथा निर्यातक है, जबकि रेशम उद्योग एक कृषि आधारित कुटीर उद्योग है। भारत का विश्व के प्रमुख कच्चे रेशम उत्पादन के रूप में दूसरा स्थान है। मत्स्यि की क्षेत्र का देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह देश में भारी संख्या में विशेष तथा ग्रामीण जनसंख्या के लिए रोजगार अवसरों का एक बड़ा स्रोत है। इसी प्रकार भारत में पशुधन तथा मुर्गी पालन के विशाल संसाधन हैं जो ग्रामीण जनसाधारण के कल्याण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय डेयरी उद्योग ने 9वीं योजना से पर्याप्त संवृद्धि संवेग हासिल किया है। वर्ष 2006-2007 के दौरान भारत का दुग्ध उत्पादन 100.9 मिलियन टन के स्तर पर पहुँच गया जिससे विश्व में इस क्षेत्र में हमारे देश का स्थान सबसे ऊपर हो गया है।

इस प्रकार कृषि तथा उससे सम्बन्धित उद्योगों में असंख्य व्यावसायिक अवसर विद्यमान है। विश्व भर से निवेशक इसकी विद्यमान है। संभावनाओं का लाभ उठाने तथा दोहन न किए गए क्षेत्रों का अन्वेषण करने के लिए इस क्षेत्र में अधिकाधिक निवेश करना चाहते हैं।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार माना जाता है। कृषि राज्य का विषय होने के कारण यह राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व है कि वे अपने राज्य के भीतर इस क्षेत्र की संवृद्धि तथा विकास को सुनिश्चित करें। इसके लिए अनेक राज्यों में पृथक-पृथक विभाग स्थापित किये गये हैं। कृषि मंत्रालय के अन्तर्गत कृषि एवं सहकारिता विभाग कृषि क्षेत्र के विकास के लिए उत्तरदायीत्व नोडल संगठन है। यह देश के भूमि, जल, मृदा तथा पौध संसाधनों के इष्टतम उपयोग के जरिए तीव्र कृषि सम्बन्धी संवृद्धि हासिल करने की ओर लक्षित राष्ट्रीय नीतियों तथा कार्यक्रमों के निरूपण तथा क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है।

कृषि उत्पादकता में कमी को रोकने के उद्देश्य से सरकार द्वारा हाल के वर्षों में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रवर्तन किए गए हैं, इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण निम्न हैं-

---

* प्रवक्ता–वाणिज्य विभाग, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

1. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम
2. राष्ट्रीय बागवानी मिष्ठान
3. संस्थागत ऋण का किसानों तक प्रसार
4. राष्ट्रीय मधुमक्खी बोर्ड की स्थापना
5. राष्ट्रीय वर्षा-पोषित क्षेत्र प्राधिकरण की स्थापना
6. राष्ट्रीय मत्स्य उद्योग विकास बोर्ड की स्थापना
7. जल संभरण विकास और सूक्ष्म सिंचाई कार्यक्रम
8. कृषि विपणन में सुधार और बाजार के इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास
9. सहकारी क्षेत्र का पुनरुज्जीवन
10. लघु विकास कृषि-व्यवसाय कन्सोर्टियम द्वारा जोखिम पूँजी भागीदारी के माध्यम से कृषि व्यवसाय का विकास
11. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिष्ठान
12. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिष्ठान
13. राज्यों को कृषि में अधिक निवेष्ठा के लिए प्रोत्साहन हेतु राष्ट्रीय कृषि विकास योजना
14. गोदाम विकास और विनिमय के लिए विधायी ढाँचा

सरकार द्वारा महत्त्वपूर्ण पहल-

1.राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आर.के.वी.वाई.)-

यह राज्य सरकारों को अपनी राज्य योजनाओं में कृषि में निवेष्ठा का हिस्सा बढ़ाने को प्रेरित करने के लिए बनायी गयी है। इसका उद्देष्ठय है कि कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्र का सकल विकास सुनिष्ठिचत करके ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिष्ठात वार्षिक वृद्धि प्राप्त जा सके। इस स्कीम के अन्तर्गत सहायता इस बात पर निर्भर करती है कि कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्रों पर किए गए आधार रेखा प्रतिष्ठात खर्च से ऊपर कृषि तथा सम्बधित क्षेत्रों के लिए राज्यों के बजट में कितनी राष्ठि उपलब्ध करायी गयी है। राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अन्तर्गत निधियाँ केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों को 100 प्रतिष्ठात अनुदान के रूप में उपलब्ध करायी जाती हैं। स्कीम के मुख्य उद्देष्ठय निम्न हैं-

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिष्ठान- यह एक केन्द्र द्वारा समर्क्षित योजना है। इसका उद्देष्ठय है कि ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि के अन्त तक गेहूँ, चावल तथा दालों के उत्पादन में उत्पादन के आधार स्तरों से क्रमष्ठा: 10, 8 और 2 मिलियन टन की वृद्धि की जाए। मिष्ठान का लक्ष्य उपर्युक्त फसलों के खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि निम्नलिखित उपायों से करने का है-

1. क्षेत्र का प्रसार तथा उत्पादकता वृद्धि
2. मृष्ठा की उर्वरता और उत्पादकता की बहाली
3. रोजगार के अवसर पैदा करना
4. लक्षित जिलों के किसानों का आत्मविष्ठवास बहाल करने के लिए खेत स्तर की अर्थव्यवस्था को बढ़ाना।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिष्ठान की विभिन्न गतिविधियाँ-

1. उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी का प्रदर्ष्ठान
2. उच्च उत्पादी किस्मों तथा उत्तम संकर बीजों का वितरण

3. नवमोचित किस्मों को लोकप्रिय बनाना।
4. सर्वोत्तम निष्पादन करने वाले जिलों के लिए पुरस्कारों सहित पहचाने गए जिलों को कोई भी स्थानीय क्षेत्र-विशिष्ट नीति अपनाने की छूट दिया जाना।

3. किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति 2007- भारत सरकार ने राष्ट्रीय किसान आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखकर और राज्य सरकारों से परामर्श के बाद किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति 2007 अनुमोदित कर दी है। किसानों के लिए राष्ट्रीय नीति ने, अन्य बातों के साथ, खेती क्षेत्र के विकास के लिए एक सम्पूर्ण दृष्टिकोण की व्यवस्था की है।

इस नीति का मुख्य केन्द्र समग्र रूप से परिभाषित 'किसान' है न कि केवल कृषि के सन्दर्भ में। उस दृष्टि से यह एक कृषि नीति से बहुत अधिक व्यापक है। अन्य बातों के साथ इसका उद्देश्य यह है कि किसानों की आय में काफी सुधार करके खेती की आर्थिक व्यवहार्यता को सुधारा जाए। साथ ही साथ उपयुक्त कीमत नीति, जोखिम घटाने के उपायों आदि के अतिरिक्त उत्पादकता में वृद्धि, लाभकारिता और भूमि, जल तथा समर्थन सेवाओं के सुधार पर जोर दिया गया है।

मूल्यांकन- उद्यमिता विकास कार्यक्रम उत्तर प्रदेश के जिलों में बहुत अधिक सफल नहीं हो पाया। उसके प्रमुख कारण निम्न हैं-

1. प्रशासनिक शिथिलता-हमारे देश की प्रशासनिक मशीनरी अत्यन्त सुस्त एवं जड़ है। सरकारी विभागों व संस्थाओं में अकार्यकुशलता, लालफीताशाही, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, पक्षपात, विलम्ब, नियमों की जड़ता आदि बुराइयाँ व्याप्त हैं। प्रायः देखा जाता है कि अफसर किसी न किसी बहाने कार्यों को टालने का प्रयास करते हैं। जब कभी कोई उद्यमी किसी अधिनियम के अन्तर्गत कार्य करवाने जाता है तो उसे कई दिनों, महीनों और कई बार वर्षों तक इन्तजार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में सामान्य कृषक ऐसी दास्तानों को सुनकर ही दुम दबा कर भाग खड़ा होता है।

2. उपयुक्त चयन प्रक्रिया का अभाव- कृषि उद्यमिता विकास कार्यक्रम के लिए उपयुक्त सम्भाव्य उद्यमियों का चयन होना आवश्यक है। उपयुक्त चयन प्रक्रिया के अभाव में इस पर निर्धारित किया गया धन तथा समय दोनों ही राष्ट्रीय बर्बादी होगी। जिनके पास खेत है, वह किसान है यह मान लिया जाता है और सारी सुविधा उन्हें ही दी जाती है। इसका दूसरा पहलू यह है कि ऐसे भी उद्यमी हैं जिनके पास खेत नहीं है, वे हुण्डा या किसी समझौते के अन्तर्गत उस भूमि पर खेती करते हैं। यह देखा जाता है कि इन सारी योजनाओं का लाभ उनको इस आधार पर नहीं मिलता कि वह भू-स्वामी नहीं हैं। इस प्रकार की चयन प्रक्रिया को बदलने की जरूरत है।

3. कृषि उद्यमिता मनोवृत्ति का अभाव- जिस देश की युवा पीढ़ी में व्यावसायिक रुचि, जोखिम लेने की क्षमता, रचनात्मक चिन्तन, उद्यमिता दृष्टिकोण व उद्योग धन्धे स्थापित करने की भावना का अभाव होता है, वहाँ उद्यमिता का विकास रुक जाता है। वर्तमान समय में सभी सुरक्षा को ज्यादा महत्त्व दे रहे है। नौकरी तथा उद्यम में नौकरी को प्राथमिकता दी जा रही है।

सन्दर्भ-

1. उद्यमिता के मूलाधार-आर.सी. अग्रवाल
2. प्रष्ठन-सूची द्वारा
3. Google.com उद्यमिता विकास कार्यक्रम

धर्मशास्त्रों का इतिहास : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

Jh i:dk'k fi;n'kh

अध्ययन की आवश्यकता- 1. धर्मशास्त्रों को एक सूत्र में बाँधना।
2. धर्मशास्त्रों के माध्यम से धार्मिक शिक्षाओं को समझना।
3. धर्मशास्त्रों के माध्यम से समाज और संस्कृति को समझना।
4. मानव के अधिकारों, कर्तव्यों और बन्धनों को समझना।

अध्ययन की विधि- प्रस्तुत शोध आलेख में द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है जिसका उल्लेख आलेख के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ-सूंची में किया गया है।

प्रस्तावना:- धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है धारण करना, आलम्बन करना अथवा पालन करना। अथर्ववेद में धर्म का अर्थ धार्मिक आचरण-नियम से है। इस प्रकार धर्म के सम्बन्ध में जो भी व्यवस्थित ''धर्मशास्त्रों के माध्यम से धर्म की शिक्षा दी जाती है, इसका उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट रूप से मिलता है।''

धर्मशास्त्रों ने हिन्दू समाज को धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक रूप से एक सूत्र में बाँधना चाहा, इसमें प्रत्येक व्यक्ति को समाज का अविच्छिन्न अंग माना है, कहीं भी व्यक्तिगत स्वार्थ को सम्पूर्ण समाज के ऊपर नहीं माना है।

धर्मशास्त्र एक दृष्टि में-

वेद
⇓
ब्राह्मण
⇓
आरण्यक
⇓
उपवेद
⇓
धर्मसूत्र
⇓
स्मृतियाँ
⇓
उपनिषद्
⇓
पुराण

* i:oDrk& lekt'kkL= foHkkx] egkjk.kk i:rki egkfo|ky;] tiy /kkIM] xkj[kij

धर्मष्ठाास्त्र का निर्माणकाल

धर्मष्ठाास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का निर्माण कब से प्रारम्भ हुआ? इस प्रष्ठन का निष्ठिचत और सही उत्तर देना सम्भव नहीं है। आरम्भ में धर्म सम्बन्धी आख्यान ष्ठलोक छन्दों में या ष्ठलोकों में निर्मित थे, जो मौखिक थे। गौतम, बौधायन तथा आपस्तम्ब के धर्मसूत्र निष्ठिचत रूप से ईसापूर्व 600 और 300 (छः सौ और तीन सौ) के बीच हैं। बौधायन और गौतम ने बहुत से धर्मष्ठाास्त्रों को 'इत्येके' कहकर उद्धष्ठ किया है।

इस प्रकार धर्मष्ठाास्त्रों के ग्रन्थों का काल निर्णय बड़ा कठिन कार्य है। विभिन्न धर्मसूत्रों-बौधायन, आपस्तम्ब इत्यादि से यह स्पष्ट हो जाता है कि ष्ठलोकबद्ध ग्रन्थ, धर्मसूत्रों से पहले अस्तित्व में थे। बौधायन और आपस्तम्ब के समय धर्म सम्बन्धी एक वष्ठत साहित्य था, जो आज उपलब्ध नहीं है।

धर्मसूत्र

आरम्भ में बहुत से धर्मसूत्र कल्प सूत्र के अंग थे, आपस्तम्ब तथा बौधायन धर्मसूत्र में कल्प परम्परा की सम्पूर्णता पायी जाती है। कुछ विद्यमान धर्मसूत्रों से पता चलता है कि उनके विभिन्न चरणों (Stapes) में गह्यसूत्र भी रहे होंगे। धर्मसूत्रों का सम्बन्ध आर्य जाति के सदस्यों के आचार नियमों से था, अतः कालान्तर में सभी धर्मसूत्र प्रमाण स्वरूप स्वीकार किये गये। यहाँ पर कुछ प्रमुख धर्मसूत्र एवं कुछ प्रमुख स्मष्ठतियों की चर्चा की जाएगी जो इस प्रकार हैं:-

गौतम धर्मसूत्र

विद्यमान धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सबसे पुराना है, गौतम धर्मसूत्र का सामवेद से गहरा सम्बन्ध है। गौतम एक जातिगत नाम है; कठोपनिषद् में नचिकेता एवं उसके पिता दोनों गौतम नाम से पुकारे गए हैं।

गौतम धर्मसूत्र केवल गद्य है परन्तु कहीं-कहीं इसमें ष्ठलोकों से पूर्ण छन्द की ध्वनि अवष्ठय मिल जाती है। गौतम धर्मसूत्र एक लम्बे साहित्य की ओर विस्तष्ठ संकेत है। इसमें वैदिक संहिताओं के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों की चर्चा है-उपनिषद्, वेदांग, पुराण, उपवेद और धर्मष्ठाास्त्र इत्यादि। इससे स्पष्ट होता है कि गौतम के पूर्व धर्मष्ठाास्त्र के क्षेत्र में बहुत से ग्रन्थ थे। गौतम के विषय में सबसे प्राचीन संकेत बौधायन धर्मसूत्र में मिलता है।

बौधायन धर्मसूत्र

बौधायन कष्ठष्ण यजुर्वेद के आचार्य थे। बौधायन ग्रन्थ पूर्ण रूप से अभी नहीं प्राप्त हो सका है। बौधायन धर्मसूत्र ने बौधायन गष्ठह्यसूत्र की चर्चा की है। धर्मसूत्रकार बौधायन ने अपने पूर्वज जिनका नाम कण्व बोधायन था का उल्लेख किया है। बौधायन को निम्न ग्रन्थ ज्ञात थे-चारों वेद, तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि।

उपलब्ध बौधायन धर्मसूत्र गौतम धर्मसूत्र के बाद की कष्ठति है, वास्तव में बौधायन का समय उपनिषदों के बाद का है, यद्यपि बौधायन आपस्तम्ब धर्मसूत्र में बहुत से सूत्र समान हैं किन्तु तुलना करने पर पता चलता है कि आपस्तम्ब बौधायन से अपेक्षाकष्ठत अधिक दष्ठढ़ एवं कट्टर हैं परन्तु इन सभी विचारों से इन धर्मसूत्रों का कालखण्ड निष्ठिचत करना सम्भव नहीं है। वसिष्ठ धर्मसूत्र की बहुत सी बातें बौधायन धर्मसूत्र में ज्यों की त्यों पायी जाती हैं। इससे यह बात कही जा सकती है कि बौधायन, वसिष्ठ एवं मनु ने एक ही ग्रन्थ से धर्म सम्बन्धी विचार लिए हों, या कालान्तर में इन ग्रन्थों में ये बातें आ गयी हों।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र

आपस्तम्ब धर्मसूत्र के संस्करण कई बार निकले हैं। कष्ठष्ण यजुर्वेद को, तैत्तिरीय ष्ठाखा के आपस्तम्बीय श्रौत, गष्ठह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र एक ही व्यक्ति द्वारा निर्मित हुए थे। आज जितने भी धर्मसूत्र विद्यमान हैं, उनमें

आपस्तम्ब अपेक्षाकृत अधिक संक्षिप्त एवं सुगठित शैली में है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में दस धर्माचार्यों के नाम बताए हैं-एक, कण्व, काण्व, कुणिक, कुत्स, कौत्स, पुष्करसादि, वार्ष्यायणि, श्वेतकेतु एवं हारीत। हारीत की चर्चा बौधायन एवं वसिष्ठ ने भी की है।

प्राचीनकाल से ही आपस्तम्ब धर्मसूत्र को प्रमाण रूप में माना जाता रहा है। विश्वरूप ने याज्ञवल्क्य स्मृति में आपस्तम्ब धर्मसूत्र की चर्चा लगभग 20 बार की है। मनुस्मृति में भी आपस्तम्ब की चर्चा अनेक बार की है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का काल अनुमान के सहारे ही निश्चित किया जा सकता है। सम्भवतः यह गौतम और बौधायन धर्मसूत्र के बाद का है और 500 ई. सन् के पूर्व यह प्रमाण के रूप में ग्रहण कर लिया गया था। याज्ञवल्क्य एवं शंख लिखित आपस्तम्ब को धर्मशास्त्र कहा गया है।

स्मृतियाँ

स्मृति शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। स्मृति वेदवाङ्मय से इतर ग्रन्थों यथा पाणिनि के व्याकरण, श्रौत, गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्रों, महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बन्धित है, किन्तु संकीर्ण अर्थों में स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही जैसा है, ऐसा मनु का कहना है। गौतम ने मनु को छोड़कर किसी अन्य स्मृतिकार का नाम नहीं लिया है, यद्यपि उन्होंने धर्मशास्त्रों का उल्लेख किया है। यहाँ पर कुछ प्रमुख स्मृतियों की चर्चा की जा रही है जो इस प्रकार हैं-

मनुस्मृति

भारत में मनुस्मृति का सर्वप्रथम मुद्रण सन् 1831 ई. में कलकत्ता में हुआ था। इसके उपरान्त इसके इतने संस्करण प्रकाशित हुए कि उनका नाम देना सम्भव नहीं है। 'धर्मशास्त्रों में मनु को मानव जाति का पिता कहा गया है।' मनुस्मृति में कहा गया है कि मनु ने ही सर्वप्रथम यज्ञ किया। मनुस्मृति का प्रणयन किसने किया यह कहना कठिन है परन्तु सत्य यह है कि मानव के आदि पूर्वज मनु ने इसका प्रणयन नहीं किया है। ऐसा हो सकता है कि इस महान ग्रन्थ की प्राचीनता एवं प्रमाणिकता देने के उद्देश्य से इसे मनुस्मृति कहा गया। धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान मैक्समूलर तथा बुह्लर ने यही प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि मानव चरण के धर्मसूत्र का संशोधित रूप ही मनुस्मृति है।

मनुस्मृति में छः अन्य मनुओं की चर्चा हुई है। वणीमान मनुस्मृति में 12 अध्याय एवं 2694 श्लोक हैं। मनुस्मृति सरल एवं धारा प्रवाह शैली में प्रणित है। इसके व्याकरण अधिकांशतः पाणिनि सम्मत हैं। इसके सिद्धान्त गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब के धर्मसूत्रों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसके बहुत से श्लोक वसिष्ठ एवं विष्णु के धर्मसूत्रों से मिलते हैं तथा भाषा की दृष्टि से मनुस्मृति एवं कौटिलीय में बहुत कुछ समानता है।

मनु को अपने पूर्व के साहित्य का पर्याप्त ज्ञान था। उन्होंने तीनों वेदों के नाम लिए हैं और अथर्ववेद को अथर्वा गिरसी श्रुति कहा है। मनुस्मृति में आरण्यक, छः वेदांगों, एवं धर्मशास्त्रों की चर्चा आयी है। मनु ने वेदान्त की भाँति ब्रह्म का वर्णन किया है। इसके साथ ही मनुस्मृति में मनु ने उपनिषद् की ओर संकेत किया है। मनुस्मृति में वेदों की निन्दा की ओर संकेत मिलता है। मनुस्मृति के सम्बन्ध में डॉ. बुह्लर का कथन है कि, ''प्राचीन समय में एक मानव धर्मसूत्र था, जिसका रूपान्तर मनुस्मृति में हुआ है।'' परन्तु मानव धर्मसूत्र का उल्लेख किसी भी धर्मशास्त्र में नहीं प्राप्त हुआ है।

मनुस्मृति का काल निर्णय-

मनुस्मृति का सबसे प्राचीन टीका मेधातिथि का है, जिसका काल 900 ई. माना गया है। वेदान्त सूत्र

के भाष्य में शंकराचार्य ने मनु को अधिकतर उद्धृत किया है। वलभीराज धारसेन के एक अभिलेख से पता चलता है कि सन् 571 ई. में वर्तमान मनुस्मृति उपस्थित थी। अपरार्क एवं कुल्लूक ने भी भविष्य पुराण द्वारा उद्धृत मनुस्मृति के श्लोकों की चर्चा की है। बृहस्पति ने, जिनका काल 500 ई. है, ने मनुस्मृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। प्रसिद्ध ग्रन्थ रामायण में भी मनुस्मृति की बातें पायी गयी हैं।

उपर्युक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि द्वितीय शताब्दी के बाद के अधिकतर लेखकों ने मनुस्मृति को प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। वर्तमान मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत अधिक प्राचीन है, क्योंकि मनुस्मृति में न्याय सम्बन्धी बातें अपूर्ण हैं और याज्ञवल्क्य स्मृति इस सम्बन्ध में पूर्ण है। मनुस्मृति इसके बहुत पहले की रचना होगी। वर्तमान मनुस्मृति गठन एवं सिद्धान्तों में प्राचीन धर्मसूत्रों यथा-गौतम, बौधायन एवं आपस्तम्ब से बहुत आगे है। अतः निःसन्देह इसकी रचना धर्मसूत्रों के उपरान्त हुई है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषणों से स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति की रचना ई. पू. दूसरी शताब्दी तथा ईसा के उपरान्त दूसरी शताब्दी के बीच कभी हुई होगी।

श्री वी.एन. माण्डलिक ने कहा है कि मनुस्मृति ने महाभारत का भावांश लिया है। महाभारत में 'मनुब्रवीत', 'मनुराजधर्माः' और मनुशास्त्र जैसे शब्द आए हैं, जिनमें कुछ उद्धरण आज की मनुस्मृति में पाए जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति महाभारत से प्राचीन ग्रन्थ है।

याज्ञवल्क्य स्मृति

याज्ञवल्क्य वैदिक ऋषि-परम्परा में आते हैं। महाभारत में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वैशम्पायन और उनके शिष्य याज्ञवल्क्य में सम्बन्ध विच्छेद हुआ और सूर्योपासना के फलस्वरूप याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुर्वेद, शतपथ आदि का श्रुति प्रकाश मिला। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध-विच्छेद वाली घटना का उल्लेख विष्णु एवं भागवत पुराणों में मिलता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य एक बड़े दार्शनिक के रूप में अपनी पत्नी मैत्रेयी से ब्रह्म एवं अमरता के बारे में बातें करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति और अग्निपुराण में काफी साम्यता पायी जाती है गरुण पुराण में खुलकर याज्ञवल्क्य स्मृति का उल्लेख किया गया है। शंख लिखित-धर्मसूत्र ने धर्मशास्त्रकार याज्ञवल्क्य का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक सुगठित एवं संक्षिप्त है। याज्ञवल्क्य स्मृति में केवल लगभग 1,000 श्लोक हैं। इसकी शैली सरल और धाराप्रवाह है।

याज्ञवल्क्य ने विष्णुधर्म की बहुत सी बातें मान ली हैं। इनकी स्मृति में और कौटिल्य में पर्याप्त समानता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के बहुत से श्लोक मनुस्मृति से मेल खाते हैं। कई विचारों और प्रसंगों में वह मनु से बहुत बाद के विचारक ठहरते हैं। उदाहरण के लिए-मनु ब्राह्मण को शूद्रकन्या से विवाह करने का आदेश देते हैं (3.13), किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा नहीं किया। मनु पुत्रहीन पुरुष की विधवा पत्नी को दायभाग पर मौन से हैं, किन्तु इस विषय पर याज्ञवल्क्य बिल्कुल स्पष्ट हैं, उन्होंने विधवा को सर्वोपरि स्थान पर रखा है। मनु ने जुए की भर्त्सना की है, किन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे राज्य-नियंत्रण में रखकर कर का एक उपादान बना डाला है। इसी प्रकार कई बातों में याज्ञवल्क्य मनु से बहुत आगे हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति का काल निर्णय

याज्ञवल्क्य स्मृति का काल निर्णय सूत्रों के आधार पर ई.पू. पहली शताब्दी तथा ईसा के बाद तीसरी शताब्दी के आस-पास मानी (स्वीकार की) जा सकती है।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य नाम वाली तीन अन्य स्मृतियाँ हैं, वृद्ध याज्ञवल्क्य, योग याज्ञवल्क्य एवं वृहद याज्ञवल्क्य। ये तीनों ही स्मृतियाँ याज्ञवल्क्य स्मृति से तुलनात्मक रूप से अत्यधिक

प्राचीन हैं। विष्ठवरूप ने वष्ठद्ध-याज्ञवल्क्य को उद्धष्ठत किया है। दायभाग के अनुसार जितेन्द्रीय ने वष्ठद्ध-याज्ञवल्क्य की चर्चा की है। याज्ञवल्क्य ने स्वयं लिखा है कि- ''वे योगष्ठास्त्र के प्रणेता थे। योग-याज्ञवल्क्य 800 ई. में अस्तित्व में था।'' वाचस्पति मिश्र ने अपने योग सूत्र भाष्य में योग-याज्ञवल्क्य के कुछ ष्ठलोकों को लिया है। वाचस्पति ने अपना 'न्याय सूची' निबन्ध सन् 841-42 ई. में लिखा।

ऐसा कहा जाता है कि याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मा से योगष्ठास्त्र का अध्ययन किया और उसे अपनी पत्नी गार्गी को सिखाया। वस्तुत: योग याज्ञवल्क्य एवं वष्ठद याज्ञवल्क्य धर्मष्ठास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं है।

पराष्ठार स्मष्ठति

पराष्ठार स्मष्ठति एक प्राचीन स्मष्ठति है, क्योंकि याज्ञवल्क्य ने पराष्ठार को प्राचीन धर्म वक्ताओं में गिना है। गरुड़ पुराण ने पराष्ठार स्मष्ठति के 39 ष्ठलोकों को संक्षिप्त रूप में लिया है। इससे स्पष्ट होता है कि यह स्मष्ठति पर्याप्त प्राचीन है। कौटिल्य ने पराष्ठार के मतों की चर्चा छ: बार की है। पराष्ठार ने राजनीति पर लिखा था, इससे स्पष्ट हो जाता है।

वर्तमान पराष्ठार स्मष्ठति में 12 अध्याय व 593 ष्ठलोक हैं। इस स्मष्ठति में आचार (व्यवहार) एवं प्रायष्ठिचत पर चर्चाएँ हुई हैं। स्मष्ठतियों में उल्लिखित कि ऋषियों ने व्यास के पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि वे कलियुग में मानवों के लिए आचरण सम्बन्धी धर्म की बातें उन्हें बतायें। व्यास जी उन्हें बदरिकाश्रम में अपने पिता पराष्ठार के पास ले गए और पराष्ठार ने उन्हें वर्णधर्म के सम्बन्ध में बताया। पराष्ठार स्मष्ठति में 19 स्मष्ठतियों के नाम आए हैं।

पराष्ठार स्मष्ठति में कुछ विलक्षण बातें पायी जाती हैं, जैसे-केवल चार प्रकार के पुत्र (औरस, क्षेत्रज, दत्त तथा कष्ठत्रिम) इत्यादि। पराष्ठार ने अन्य धर्मष्ठास्त्रों के मतों की चर्चा की है। मनु का नाम कई बार आया है। बौधायन धर्मसूत्र की बहुत सी बातें इस स्मष्ठति में पायी जाती हैं। परासर ने प्रजापति, वेद, वेदांग, धर्मष्ठास्त्र और स्मष्ठति आदि की चर्चा अनेक स्थानों पर की है।

पराष्ठार के काल अवधि का कोई प्रामाणिक समय उपलब्ध नहीं है। विष्ठवरूप, मिताक्षरा, अपरार्क, स्मष्ठति चन्द्रिका, हेमाद्रि आदि ने पराष्ठार को अधिकतर उद्धष्ठत किया है। इससे स्पष्ट है कि पराष्ठार स्मष्ठति 9वीं ष्ठताब्दी में विद्यमान थी। इसे मनु की कष्ठति का ज्ञान था अत: यह प्रथम ष्ठताब्दी से पाँचवी ष्ठताब्दी के मध्य कभी लिखी गयी होगी।

नारद स्मष्ठति

याज्ञवल्क्य एवं पराष्ठार ने नारद स्मष्ठति को धर्मवक्ताओं में नहीं गिना है परन्तु वष्ठद्धयाज्ञवल्क्य के एक उद्धरण से विष्ठवरूप ने दिखाया है कि नारद 10 धर्मष्ठास्त्रकारों में से एक थे। नारद स्मष्ठति के आरम्भिक तीन अध्याय-न्याय सम्बन्धी विधि और न्याय सम्बन्धी सभा पर है। नारद स्मष्ठति में मनुस्मष्ठति की संरचना में से बहुत अधिक सीमा तक ज्यों का त्यों ले लेने का आरोप भी है। इस प्रकार मनुस्मष्ठति और नारद स्मष्ठति में बहुत अधिक साम्यता मिलती है।

वर्तमान नारद स्मष्ठति में 1028 ष्ठलोक हैं। विष्ठवरूप, मेधातिथि एवं मिताक्षरा के इस स्मष्ठति में अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

प्रारम्भिक गद्यांष्ठा को छोड़कर सम्पूर्ण नारद स्मष्ठति ष्ठलोक छन्दों में है, इस स्मष्ठति में नारद का भी नाम आया है इसके साथ ही आचार्यों, धर्मष्ठास्त्र एवं अर्थष्ठास्त्र की चर्चा आयी है। नारद ने वसिष्ठ धर्मसूत्र एवं पुराण की चर्चा की है। कभी-कभी नारद स्मष्ठति को मनु पर आधारित माना जाता है। नारद स्मष्ठति में

भी महाभारत के कई श्लोक आए हैं। कौटिल्य और नारद में भी कुछ स्थानों पर साम्यता पायी जाती है।

सम्भवतः नारद स्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति के बाद की रचना है। इस प्रकार नारद स्मृति के काल निर्णय में बहुत अधिक मतभेद है, तथापि चौथी या पाँचवीं शताब्दी का प्रथम-अर्द्ध सामान्यतः विश्वास के योग्य है। यदि यह सही है तो नारद की तिथि पाँचवीं शताब्दी के बहुत पहले ठहरती है। नारद कहाँ के रहने वाले थे? इसका सही उत्तर देना बड़ा कठिन है; कोई इन्हें नेपाली कहता है, कोई मध्यप्रदेशी किन्तु यह केवल कल्पना मात्र है। डॉक्टर भण्डारकर के मतानुसार नारद का एक नाम पिशुन भी था। इस शब्द का उल्लेख कौटिल्य ने भी किया है। पिशुन शब्द का अर्थ है 'चुगलखोर' या झगड़ा लगाने वाला। ऐसा ही पुराणों में नारद के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है।

पुराण

पुराणों की साहित्य परम्परा बहुत ही प्राचीन है। छान्दोग्योपनिषद् में- 'इतिहास पुराण' को पाँचवाँ वेद कहा गया है। धर्मशास्त्रों से प्राप्त तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि आरम्भ में केवल एक ही पुराण था। मत्स्यपुराण भी आरम्भ के एक ही पुराण की बात करता है। पतञ्जलि के महाभाष्य में पुराण एक वचन में आया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के उद्धरण से ज्ञात होता है कि पुराण पद्यबद्ध थे। वर्तमान में उपलब्ध पुराण पुराने पुराणों के संशोधित रूप हैं। परम्परा के अनुसार पुराण 18 एवं उपपुराणों की संख्या भी 18 है।

आज का भारतीय धर्म पूर्ण रूप से पौराणिक है। पुराणों की तिथि-समस्या महाकाव्यों की भाँति ही कठिन है परन्तु कुछ पुराण 600 ई. के पूर्व प्रणीत हो चुके थे। पुराणों का मुख्य सम्बन्ध व्यक्ति के संस्कारों से है अर्थात् पुराण व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धी नियमों से सम्बन्धित एक व्यवहारिक ग्रन्थ हैं जो समाज को दिशा निर्देशित करते है।

निष्कर्ष-

धर्मशास्त्रों पर इतने ग्रन्थ हैं कि उन्हें एक सूत्र में बाँधना बड़ा ही कठिन है। धर्मशास्त्रों ने हिन्दू समाज को धार्मिक, नैतिक, कानूनी इत्यादि सभी मामलों में समाज को एक सूत्र में बाँधना चाहा। धर्मशास्त्रों ने प्रत्येक जाति के सदस्यों एवं प्रत्येक व्यक्ति को आर्य समाज का अविच्छिन्न अंग माना है, कहीं भी व्यक्तिगत स्व (स्वार्थ) को सम्पूर्ण समाज के ऊपर नहीं माना है।

धर्मशास्त्रों द्वारा भारतीय संस्कृति को संजोए रखने के लिए हमें कृतज्ञ होना होगा। धर्मशास्त्रकारों के प्रयासों का ही परिणाम है कि सनातन भारतीय संस्कृति आज भी अक्षुण्ण है और आगे भी रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ (Bibillio graphy)

1.	धर्मशास्त्रों का इतिहास	-	काणे, वामन पाण्डुरंग।
2.	प्राचीन भारत का इतिहास	-	श्रीवास्तव, के.सी.।
3.	उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास	-	पाठक, विशुद्धनन्द
4.	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास	-	मिश्र, जयशंकर
5.	प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन	-	भण्डारकर, जी.आर.
6.	प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास	-	सिंह, रामवृक्ष

ष्ठ्वेतपोष्ठ/ष्ठ्वेतवसन अपराध : एक समाजष्ठास्त्रीय विष्ठलेषण

d|ekjh iue

iioDrk] lekt'kkL=

सफेदपोष्ठा अपराध (WHITE COLLAR CRIME)– सफेदपोष्ठा अपराध को व्यवस्थित रूप से प्रतिपादित करने का प्रथम श्रेय अमेरिकी समाजष्ठास्त्री एवं अपराधष्ठास्त्री एडविन एच. सदरलैण्ड को है। सदरलैण्ड ने इस पद का प्रयोग अपने ष्ठोध पत्र, 'ह्वाइट कालर क्रिमिनैलिटी' में किया है। अपराधष्ठास्त्रियों का ध्यान उन अपराधियों की ओर आकर्षित नहीं हुआ है जो प्रायः समष्ठ, धनी, सुसभ्य, सुसंस्कष्ठ एवं सुष्ठिक्षित सामाजिक पष्ठठभूमि से सम्बन्धित हैं; तथा जो अवैधानिक और असामाजिक ढंग से अधिकाधिक धन व सम्पदा तथा भौतिक सुख–समष्ठि की वस्तुओं को अर्जित करने में संलग्न हैं।

ऐसे अपराधी सफेदपोष्ठा, ष्ठ्वेतवसन या सफेद वस्त्र से ढके रहने वालो ऐसे उच्चस्तरीय व्यक्ति होते हैं जो किसी समाज या देष्ठा के उच्च सामाजिक स्तर के प्रतिनिधि, नेता अथवा प्रष्ठासनतंत्र में ष्ठीर्षस्थ या उच्च सत्ताधारी होते हैं। 'सफेदपोष्ठा अपराधी, उच्च सामाजिक पद अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त वह व्यक्ति होता है,' जो अपनी प्रतिष्ठा की आड़ में, अपने पेष्ठो (व्यवसाय) के दौरान करता है, सफेदपोष्ठा अपराध की आवष्ठि पूँजीवादी देष्ठों में अपेक्षाकष्ठ बहुत अधिक पायी जाती है।

सफेदपोष्ठा अपराध के कारण (CAUSES OF WHITE COLAR CRIME)– सफेदपोष्ठा अपराध की समस्या मनुष्य की अधिकाधिक धनार्जन करने तथा भौतिक सुख–समष्ठि ऐष्ठो–आराम तथा विलासितावादी वस्तुओं के संग्रहण करने की प्रवष्ठि के कारण उत्पन्न हुई है। सफेदपोष्ठा अपराध को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित कारणात्मक सूत्रों का उल्लेख कर देना यहाँ पर आवष्ठयक है–

1. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जितनी ही अधिक सष्ठाक्त होगी, सफेदपोष्ठा अपराध उतने ही अधिक घटित होंगे।
2. व्यक्ति में धन–लोलुपता की प्रवष्ठि जितनी ही अधिक होगी, उनमें अवैधानिक कार्य करने की प्रवष्ठि उतनी ही अधिक होगी।
3. आर्थिक साधनों का वितरण जितना ही असमान होगा, उच्चतर वर्ग के सदस्यों के अर्थार्जन करने के सन्दर्भ में सामाजिक तथा अवैधानिक कार्य करने की प्रवष्ठि उतनी ही अधिक होगी।
4. भौतिकवादी वस्तुओं को संग्रहण करने की प्रवष्ठि जितनी ही अधिक विकसित होगी, व्यक्तियों में सफेदपोष्ठा अपराधिता की प्रवष्ठि उतनी ही अधिक होगी।
5. व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग नियंत्रण में कानून जितने ही अधिक उदारवादी, नमनीय, ष्ठिथिल, निष्क्रिय एवं दोषपूर्ण होंगे, सफेदपोष्ठा अपराध उतने ही अधिक बढ़ेंगे।
6. कोई समाज जितना ही अधिक विघटित होगा, सफेदपोष्ठा अपराध ऐसे समाज में उतने ही अधिक होंगे।
7. सामान्य जनता में सफेदपोष्ठा अपराधियों के प्रति सम्मान प्रदान करने की जितनी ही अधिक मनोवष्ठि होगी समाज में ऐसे अपराधियों की संख्या उतनी ही अधिक होगी।

सफेदपोष्ठा अपराध के प्रमुख प्रकार–

वर्तमान समय में हम सफेदपोष्ठा अपराध के कई प्रकार देख सकते हैं, जैसे–

---

* iioDrk&lekt'kkL= foHkkx] egkjk.kk irki egkfo|ky;] txy /kIM] xkj[kiij

धोखा (Fraud)- धोखा सफेदपोष्ठा अपराध का एक प्रमुख प्रकार है। धोखेबाजी के अनेक रूप होते हैं। ठगी का ही रूपान्तरण धोखबाजी है जो सामान्य अपराधी द्वारा नहीं बल्कि अपराध के उच्च जगत् में सफेदपोष्ठा अपराधियों द्वारा की जाती है। धोखेबाज व्यक्तियों की बुद्धि अत्यन्त प्रखर तथा कौष्ठालवान होती है। ष्ठीघ्रतिष्ठीघ्र अपना प्रभाव दूसरों पर डालने में ये अत्यन्त कुष्ठाल होते हैं।

जालसाजी (Forgery)- जालसाजी भी कई प्रकार से की जा सकती है किन्तु कोई भी जालसाजी से सम्बन्धित अपराध तभी करता है जब वह किसी रूप में किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति को अथवा उसके प्रभुत्व को जानता हो। उदाहरण-किसी अन्य व्यक्ति के चेक का अपहरण कर उसका झूठा हस्ताक्षर बनाकर किसी बैंक से रुपये प्राप्त कर लेना, दूसरे की भूमि को उसका झूठा हस्ताक्षर बनाकर क्रय कर लेना इत्यादि।

घूसखोरी (Bribery)- घूसखोरी के अनेक रूप समाज में देखने को मिलते हैं। हमारे देष्ठा में घूसखोरी इतनी अधिक व्याप्त है कि वह निजी एवं राजकीय संस्थानों में समान रूप से पायी जाती है। यद्यपि सर्वाधिक घूसखोरी राजकीय अधिकारियों व कर्मचारियों में दिखाई पड़ती है यथा- रिष्ठवत लेकर अनुचित लाभ दिलाना, सरकारी कागजातों में हेरफेर करके गड़बड़ करना। पक्षपातपूर्ण ढंग से कार्य करना। आज सरकारी संस्थानों में बिना रिष्ठवत दिये वैधानिक कार्य भी सम्पादित नहीं किया जा सकता यद्यपि घूसखोरी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अनुसार दण्डनीय अपराध है।

गबन (Embezzlment)- गबन सफेदपोष्ठा अपराध का ही एक प्रकार है। डोनाल्ड आर. क्रेसी में 133 गबनकारियों का अध्ययन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है उसके अनुसार अन्य व्यक्ति ही नियमों का उल्लंघन करते हैं और जब कोई आर्थिक संकट आ जाता है तब वे अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति को अपने हित में परिणित कर देते हैं, और इस स्थिति में उन्हें अपराध का आत्मबोध नहीं रह जाता है और वे अपने को मात्र अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति के भोक्ता के रूप में ही देखते हैं।

भ्रष्टाचार (Corruption)- प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष वैयक्तिक लाभ प्राप्त करने के लिए जानबूझकर विष्ठोष रूप से उल्लिखित कर्तव्य का पालन न करना भ्रष्टाचार है। अपने अधिकतम अर्थ में एक सार्वजनिक पद अथवा जनजीवन में उपलब्ध एक विष्ठोष स्थिति के साथ सम्बद्ध ष्ठाक्ति तथा प्रभाव का अनुचित अथवा स्वार्थपूर्ण प्रयोग ही भ्रष्टाचार है।

चोर बाजार या काला धन (Black Market)- चोर बाजार या काला बाजार का धन्धा प्राय व्यापारी वर्ग के लोग करते हैं। व्यापारियों में चोर बाजार की आवष्ठ्ति उस समय अधिक बढ़ जाती है जब किसी देष्ठा में आकस्मिक संकट ही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए किसी प्राकष्ठ्तिक विपदा-बाढ़, भूकम्प अकाल, राजनीतिक उथल-पुथल अथवा युद्ध के समय व्यापारियों में चोर बाजार की आवष्ठ्ति बढ़ जाती है। ऐसे संकट के समय चूँकि खाद्य पदार्थों एवं उपयोग की अन्य आवष्ठ्यक वस्तुओं का उत्पादन, उपभोग की वस्तुओं की दुर्लभता के कारण व्यापारीगण उनको एकत्रित कर तथा उनमें मिलावट करके उनको सरकारी मूल्यों से अधिक मूल्यों पर जनता को बेच कर अत्यधिक मात्रा में लाभ प्राप्त करते हैं।

सफेदपोष्ठा अपराध के दुष्परिणाम- सफेदपोष्ठा अपराधी में आत्मग्लानि या क्षोभ की भावना विकसित नहीं हो पाती है, ये छद्मवेष्ठी अपराधी होते हैं। सफेदपोष्ठा अपराधी द्वारा कानून व नैतिक संहिताओं के उल्लंघनों से सामाजिक आर्थिक संरचना जिस रूप में क्षतिग्रस्त होती है, सम्पूर्ण समाज का जिस रूप में दोहन होता है, वह अन्य सामान्य अपराधों की तुलना में बहुत भीषण हानिकारक एवं भयानक होता है।

वर्तमान समय में इस अपराध के अनेक दुष्परिणाम समाज में देखने को मिलता है जो निम्नलिखित

हैं–

1. सफेदपोष्ठा अपराध के परिणामस्वरूप समाज में आचारभ्रष्टता की भावना बढ़ती है जिससे न केवल आदर्श्ठा ष्ठून्यवादी तथा विचलनकारी कार्यों की दर बढ़ जाती है।
2. सफेदपोष्ठा अपराध के कारण जनसामान्य में प्रष्ठासन के प्रति अविष्ठवास की भावना का प्रादुर्भाव होता है जो जनतंत्र के लिए खतरनाक होता है।
3. सफेदपोष्ठा अपराध के फलस्वरूप समाज के अपराधी पूँजीपति बन जाते हैं जो जनसामान्य की क्षति कर स्वीकष्ठ आर्थिक व्यवस्था का ष्ठोषण करते हैं।
4. सफेदपोष्ठा अपराध के परिणामस्वरूप समाज में जनतांत्रिक मूल्यों की उपेक्षा होती है। अतएव जनतंत्र प्रष्ठासन का उपहास बन जाता है।
5. सफेदपोष्ठा अपराध के कारण समाज में रिष्ठवतखोरी, चोर बाजारी, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, छलप्रपंच, व्यापारिक हेराफेरी तथा श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार करने की आवष्ठि बढ़ जाती है।

सफेदपोष्ठा अपराध को रोकने हेतु सुझाव– इन अपराधों से उत्पन्न दोषों की गम्भीरता को देखते हुए इनके निराकरण के लिए निम्नांकित उपाय अपनाये जाने चाहिए:

1. राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार के अपराधों की छानबीन के लिए जाँच आयोग की स्थापना की जानी चाहिए।
2. सरकार द्वारा भ्रष्टाचार निरोध समिति की स्थापना की जाय।
3. सरकार द्वारा ष्ठाक्तिष्ठाली गुप्तचर विभाग की स्थापना की जाय।
4. सामाजिक विभेदीकरण को सरकारी प्रयत्नों एवं सामाजिक सुधार द्वारा समाप्त किया जाय।
5. समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, दरिद्रता एवं पूंजी के केन्द्रीकरण को समाप्त किया जाय।
6. ष्ठवेतवसन अपराधियों को भी सामान्य कानून के तहत ही दण्डित किया जाय और अपराध के अनुसार कठोर दण्ड दिया जाय।
7. न्यायाधीष्ठों द्वारा ष्ठवेतवसन अपराधियों के प्रति बरती जाने वाली नरमी एवं ढिलाई का गुप्तचर ध्यान रखें एवं सरकार को इसकी सूचना दें।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. अमेरिकन सोष्ठियोलॉजिक रिव्यू ''ह्वाइट कालर क्रिमिनैलिटी''– सदरलैण्ड एच. एडविन
2. दी ब्लैक मार्केट, ए स्टडी ऑफ ह्वाइट कालर क्राइम– किलनार्ड मार्ष्ठाल

वैष्ठवीकरण का मीडिया पर प्रभाव

JhdkUr ef.k f=kikBh

वैष्ठवीकरण का अभिप्राय किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक सीमा से बाहर आर्थिक लेन-देन की प्रक्रिया एवं उसके प्रबन्धन से होता है। इसका तात्पर्य ऐसी स्वतंत्रता से होता है जिसके अन्तर्गत कोई क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय इकाई अन्य देष्ठों में अपनी ष्ठाखाएँ खोल सकती है। वैष्ठवीकरण के अन्तर्गत आयातित वस्तु, सेवा, विचार या सिद्धान्त पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाकर ष्ठुल्क की दरों को वैष्ठिवक स्तर पर लाकर घरेलू अर्थव्यवस्था को अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाया जाता है। वैष्ठवीकरण के अन्तर्गत समाज की संरचना, उसके आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कष्ठिक जीवन का अध्ययन होता है। इसके अन्तर्गत जनसंचार को भी वैष्ठिवक स्तर पर एक गति प्रदान की जाती है। वर्तमान समय से संचार के साधन इतने विकसित और प्रभावी हो गये हैं कि विभिन्न देष्ठ एक दूसरे के निकट आ गये हैं। किसी भी देष्ठ में घटित घटनाओं का प्रभाव अल्प समय में ही अन्य देष्ठों में देखा जाता है। पूरा विष्ठव व्यापार आर्थिक सुधार व अन्य क्षेत्रों में आपसी सहयोग की महत्ता को समझ रहा है और उसमें भागीदारी कर रहा है।

वैष्ठवीकरण की अवधारणा- 15वीं ष्ठाताब्दी में यूरोप के लोगों द्वारा नए-नए देष्ठों की खोज कर समुद्र के मार्गों द्वारा इन देष्ठों तक जाना, वहाँ की सामाजिक, सांस्कष्ठिक व व्यापारिक गतिविधियों का अवलोकन करना एवं सीखना वैष्ठवीकरण के पुरातन सिद्धान्त को व्यक्त करता है। द्वितीय विष्ठवयुद्ध के बाद वैष्ठिवक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना विष्ठव ष्ठान्ति के मद्देनजर की गयी है। यह संगठन वैष्ठवीकरण के प्रत्यक्ष उदाहरण को निरूपित करता है। इसके पहले सत्रहवीं ष्ठाताब्दी के मध्य में इंग्लैण्ड का उपनिवेष्ठावाद प्रारम्भ हो चुका था। इस दिष्ठा में फ्राँस भी काफी तेजी से आगे बढ़ रहा था। धीरे-धीरे 18वीं ष्ठाताब्दी तक विष्ठव के अधिकांष्ठा देष्ठ उपनिवेष्ठावादियों की 'कालोनीज' के रूप में परिणत हो चुके थे। उपनिवेष्ठावाद का मुख्य लक्षण था दुनिया के देष्ठों के संसाधनों का दोहन एवं ष्ठोषण। उपनिवेष्ठावादी देष्ठ अपनी 'कालोनीज' से कच्चे माल को अपने यहाँ ले जाकर उनका उपयोग उत्पादों के निर्माण में करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि विष्ठव सिमट कर एक होने लगा। रेल, वायुयान जैसे परिवहन के साधनों का विकास हुआ। परिवहन के इन्हीं साधनों द्वारा वे अपने यहाँ निर्मित माल दूसरे देष्ठों में या उपनिवेष्ठित देष्ठों में भेजने लगे। इससे धीरे-धीरे दुनियाँ की अर्थ-व्यवस्था तथा बाजार व्यवस्था पर नियंत्रण होने लगा। इन्होंने श्रम का भी भूमण्डलीकरण कर मानव पूँजी का ष्ठोषण करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रक्रिया को वैष्ठवीकरण कहा गया।

वैष्ठवीकरण का उद्भव- वस्तुत: आज का जो वैष्ठिवक परिदष्ठय है उसमें 1980 के बाद तेजी से बदलाव आया। उपनिवेष्ठावाद के खत्म हो जाने से एक नयी आर्थिक व व्यापारिक अवधारणा का जन्म हुआ। इसका लक्ष्य मुक्त व्यापार था। विकसित राष्ट्रों द्वारा प्रौद्योगिकी उद्योग और अर्थव्यवस्था को एकीकष्ठ करने की कोष्ठिाष्ठा को ही वैष्ठवीकरण कहा गया। वस्तुत: सोवियत संघ के विघटन के फलस्वरूप ष्ठीत युद्ध समाप्त हो गया। इससे साम्यवादी सन्तुलन पूँजीवादी 'लोकतान्त्रिक राष्ट्रों के हाथों' में आ गया।

भारत जैसे विकासष्ठील राष्ट्रों का इसकी चपेट में आना स्वाभाविक था वैसे तो भारत में बहुत पहले से ही 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' की अवधारणा रही है। इसका तात्पर्य है-सम्पूर्ण विष्ठव एक परिवार के सदष्ठ

---

* i=oDrk&xf.kr foHkkx] egkjk.kk i=rki egkfo|ky;] tixy /kl M] xkj[ki=j

माना गया है। भारत शुरू से ही सम्पूर्ण विश्व को एक साथ देखता आया है। ब्रिटेन की 'कालोनी' में रहने के कारण प्राचीन काल से ही यहाँ का बाजार विदेशियों के लिए खुला रहा है। इस दिशा में सन् 1991 में तब एक और परिवर्तन आया जब तत्कालीन सरकार ने आर्थिक उदारीकरण का सूत्रपात किया। इसका एक मात्र लक्ष्य वैश्विक स्तर पर भारत को आर्थिक दृष्टि से सबल रूप में खड़ा करना था। आज भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में वैश्वीकरण की छाया स्पष्ट रूप से बढ़ती हुई देखी जा सकती है।

वैश्वीकरण का मीडिया पर प्रभाव- वैश्वीकरण एक बहुआयामी विकासोन्मुख प्रक्रिया है जो व्यापार, प्रौद्योगिकी, उद्योग और अर्थव्यवस्था के विकास को सार्वभौतिक दिशाओं में आकर्षित करती है। इसने सूचना और सम्प्रेषण के साधनों को तेजी से परिवर्तित करने में अहम भूमिका निभायी है। सूचना और सम्प्रेषण के साधन आज के युग की आवश्यक आवश्यकता बन चुके हैं। टेलीविजन, रेडियो से लेकर इण्टरनेट व ई-तकनीकों ने सूचना तथा संचार के क्षेत्र में जबरदस्त परिवर्तन किया है तथा सूचनाओं का विशाल भण्डार हमारे सामने प्रस्तुत किया है। पर वैश्वीकरण का ही प्रभाव है कि वर्तमान समय में सूचना तकनीकी के क्षेत्र में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों ने शैक्षणिक, आर्थिक व राजनीतिक आदि क्षेत्रों में नयी संचार क्रान्ति उत्पन्न कर दी है जिससे सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक गाँव के रूप में परिवर्तित हो गया है। जनसंचार माध्यमों के बदलते तेवर के कारण ही हमारी परम्पराएँ और सांस्कृतिक मूल्य परिवर्तित हो रहे हैं और हम एक नयी सोच, परम्परा एवं मान्यताओं को विकसित कर रहें है।

रेडियो पर प्रभाव- वस्तुत: रेडियो की विशेषता के बारे में लिखा गया है कि 'यह राष्ट्रों की सीमाओं को ही नहीं बल्कि राज्यों और वर्गों को समाज में बदलता है। यह राष्ट्रीय संस्कृति को तो बल देता ही है साथ ही केन्द्रीकरण, सामुदायिक व सामाजिक स्तरीकरण करता है।' वस्तुत: बीसवीं सदी के आखिरी दशक में सूचना और संचार के क्षेत्र में जो विस्फोट हुआ उसने इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की तस्वीर ही बदल दी। रेडियो भी इससे अछूता नहीं रहा। एफ.एम. और डी.टी.एच. के रूप में रेडियो के वैश्वीकरण का स्पष्ट प्रभाव रेडियो पर देखा जा सकता है।

निजी टी.वी. चैनलों के आगमन से रेडियो काफी प्रभावित हुआ है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को कार्य करने में सुविधाजनक होने, बिजली की समस्या तथ कीमत में सस्ता होने की वजह से इसकी पकड़ ग्रामीण क्षेत्रों में बनी हुई है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप रेडियो में निजी चैनलों की अचानक हुई बढ़ोत्तरी ने महानगरों व बड़े शहरों में एक बहुत बड़े वर्ग को अपनी चपेट में ले लिया है। विश्व के एक बड़े भू-भाग में फैले होने के कारण इसका सम्पर्क जनता से होता है। विश्व के सिमट कर करीब आ जाने से सम्पूर्ण सूचनाओं, गतिविधियों व क्रिया-कलापों को रेडियो के माध्यम से आसानी से सुना जा सकता है।

टेलीविजन पर प्रभाव- संचार क्रान्ति के शुरुआती दिनों में संचार प्रविधियों पर मानव हावी था परन्तु अब दूसरे ही स्वरूप हमारे सामने हैं। मानव मन पर संचार तंत्र बुरी तरह हावी है। जन संचार माध्यमों के तेजी से विस्तार ने एक नये सूचना समाज, संस्कृति और साहित्य को जन्म दिया है। वर्तमान युग में शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा, जिसके पास अपना टेलीविजन सेट न हो। टेलीविजन की लोकप्रियता सन् 1991 के बाद बढ़ी। वैश्वीकरण की आँधी ने इसे और भी बढ़ाया। टेलीविजन के द्वारा जो कुछ घटित हो रहा है, आप उसे सीधे प्रसारण के रूप में देख सकते हैं भारत में नब्बे के दशक में टेलीविजन चैनलों का विस्तार शुरू हुआ। उपग्रह टेलीविजन के राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय चैनल आज केबल के माध्यम से

पूरे देष्ठा में फैल चुका है। इसे व्यापक करने में वैष्ठवीकरण की प्रवष्टि ही रही है। टेलीविजन के साथ-साथ मनोरंजन का साधन भरोसेमंद और तत्काल खबर देने वाला माध्यम हो गया। वस्तुतः टी.वी. की खबरें अपने आप में इतनी महत्त्वपूर्ण व अनिवार्य पहले कभी नहीं बनी थीं। जहाँ पहले लोग सरकारी टी.वी. चैनल देखने को मजबूर थे वहीं अब चैनलों की बाढ़ सी आ गयी है। वस्तुतः मीडिया और नवमाध्यम वैष्ठवीकरण अैर सामाजिक आन्दोलनों के लिए आवष्ठयक तत्त्व हैं। जहाँ अन्य देष्ठों ने वैष्ठवीकरण को तरजीह देते हुए विष्ठव को अपने देष्ठों में चैनल कम्पनी की ष्ठाखाएँ और जनमाध्यम अन्तर्वस्तु का प्रसार करने की अनुमति दे दी वहीं भारत भी इस दिष्ठा में पीछे नहीं रहा। यहाँ तक कि विष्ठव की सबसे ज्यादा दिखने वाली बहुउद्देष्ठीय मीडिया कारपोरेष्ठान एम.टी.वी. अपनी भूमिका को लेकर काफी सतर्क है। तथा उसने एक उक्ति भी गढ़ ली-Think Global act local। एम.टी.वी. का तर्क है कि सबको वैष्ठिवक धरातल पर सजग होना चाहिए परन्तु कार्य निष्पादन स्थानीय स्तर पर ही किया जाना चाहिए। इसने सारे चैनलों को प्रतिस्पर्धा में उतरने के लिए विवष्ठा कर दिया है। इन प्रतिस्पर्द्धाओं के परिणामस्वरूप मनोरंजन के कार्यक्रमों की गुणवत्ता तो बढ़ी है, साथ ही समाचारों के प्रस्तुतीकरण के तरीके में भी अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिला है। इन प्रतिस्पर्द्धाओं ने 'तत्काल' व 'तत्क्षण' को जन्म दिया, जो दर्ष्ठाकों में रोमांच, ज्ञान व जिज्ञासा को सष्टिजित करने लगा है।

वैष्ठिवक पूँजीवादियों का मुख्य लक्ष्य होता है, ऐसे सामानों का निर्माण एवं वितरण करना जिससे अधिक लाभ मिल सके। वैष्ठिवक व्यापार स्थानीय लोगों को अपने विष्ठवास के अनुरूप परिवर्तित करने में कामयाब नहीं होता। उन्हें अपना व्यापार-कार्य बिना हस्तक्षेप के करने पर ही संतुष्टि मिलती है। संचार माध्यम इन विष्ठवव्यापी कम्पनियों को सूचना और पूँजी पूरे विष्ठव में कहीं भी एक बटन के स्पर्ष्ठा से भेजने में सक्षम बनाते हैं। अपने व्यापार-कार्य को बिना हस्तक्षेप चलाने के लिए ऐसी कम्पनियाँ किसी भी स्तर तक जा सकती है। जहाँ तक टी.वी. चैनलों की बात है तो ये खबरों को सनसनीखेज बनाने को ज्यादा तरजीह देने लगे, भले ही इससे मानवीय मूल्यों का पतन होता हो, कार्यक्रमों में अपसंस्कष्टि की झलक स्पष्ट दष्टिगोचर होने लगी। पाष्ठचात्य सभ्यता की नकल को प्रेरित कर भारतीय संस्कष्टि को ये क्षीण करने में लगी हैं। सभी चैनलों पर ऐसे कार्यक्रम आने लगे हैं जिनको परिवार के सदस्यों के साथ देख पाना मुमकिन नहीं रह गया है। भारतीय दर्ष्ठाक विष्ठोषकर बच्चे व किष्ठोर तमाम ऐसे कार्यक्रमों को देखने के लिए मजबूर हैं जिनसे उन्हें बचने की आवष्ठयकता है। ब्रेकिंग न्यूज को भड़कीला ष्ठीर्षक देना आम बात हो गयी है। वैष्ठवीकरण के प्रभाव में आकर टेलीविजनों में नये तकनीकों का सूत्रपात तो हुआ पर इसकी नयी संस्कष्टि निःसंदेह घातक सिद्ध हो रही है।

इण्टरनेट पर प्रभाव- इण्टरनेट व ई-तकनीकी का विकास 1982 से ष्ठुरू हुआ। पर इसका पहला दौर था जो 1992 तक प्रयोग के धरातल पर ही था। 1993 से 2003 तक का दौर इण्टरनेट में तकनीकी स्तर पर जबरदस्त विकास का था। माइक्रोसॉफ्ट का इण्टरनेट एक्सप्लोरर व नेटस्कोप का ब्राउजर आदि तकनीकों ने वैष्ठिवक स्तर पर एक अनोखी रफ्तार से सूचनाओं को प्रेषित करना आरम्भ किया। ई-मेल तथा नई-वेब भाषा हायर टेक्स्ट मार्क्ड ऑफ लैंग्वेज (एच.टी.एम.एल) ने इण्टरनेट को और भी सुविधा-सम्पन्न व तेज रफ्तार बना दिया।

इण्टरनेट एक ऐसा सूचना-माध्यम है जिसका उपयोग किसी भी मकसद के लिए किया जा सकता है। यह एक ओर सूचनाओं के आदान-प्रदान का उत्कष्ट माध्यम है, वहीं दूसरी ओर इसका उपयोग बिजली उत्पादित करने, घर बैठे उत्पाद को क्रय करने आदि में कर सकते हैं। सूचना तकनीकी के अधिकाधि

क प्रयोग और विष्ठोष रूप से इण्टरनेट से सारी दुनिया के नजरिए में तेजी से बदलाव आ रहा है। सूचना के आदान-प्रदान और मनोरंजन के साधनों के विस्तार में इण्टरनेट एक क्रान्तिकारी माध्यम के रूप में उभरा है। अपने आप को 'अप टू डेट' करने के उद्देष्ठय से तथा गहरी प्रतिस्पर्धा में खड़े रह पाने के लिए विभिन्न समाचार पत्रों ने इण्टरनेट संस्करण ष्ठुरू कर दिये। ऑन-लाइन पत्रकारिता (1998) का दौर होने के कारण सूचनाओं के चयन व गुणवत्ता में विकास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसने नि:सन्देह पत्रकारिता जगत् को ष्ठिखर पर पहुँचा दिया है। संचार के अन्य माध्यमों की तरह इण्टरनेट केवल सूचनाओं और समाचारों का संवाहक नहीं है। बल्कि इस माध्यम से समाचार जगत् में सार्थक हस्तक्षेप भी सम्भव है। उपभोक्ता अपनी पष्ठ्ठभूमि के अनुसार विभिन्न विषय समूह को मनपसंद अवधि, विषय क्रम व प्राथमिकता के अनुसार सूचनाओं को प्राप्त करना चाहते हैं। इसके लिए इण्टरनेट एक सष्ठाक्त माध्यम है। इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण से उपभोक्ता के बहुमूल्य समय की बचत होती है तथा सूचनाओं में वस्तुनिष्ठता बढ़ती है। टेलीविजन के रूप में पहला तकनीकी कन्वर्जेस हुआ तो इण्टरनेट ने इस कन्वर्जेस को सुगम बना दिया है। सूचना तीन तरह की होती है-मौखिक, लिखित व चित्रात्मक। टेलीविजन के माध्यम से केवल ऑडियो और वीडियो की कन्वर्जन हो सकती है पर टेक्स्ट नहीं। कम्प्यूटर ने इस कमी को दूर करते हुए टेक्स्ट की प्रोसेसिंग में भारी क्षमता हासिल की है। इण्टरनेट के द्वारा सूचनाओ-ऑडियो, वीडियो व टेक्स्ट को दूर-दूर तक भेजा जा रहा है। निष्ठिचत ही इण्टरनेट एक खुला और स्वतंत्र माध्यम है। इस पर सभी को अपने विचार व बात रखने का समान अधिकार है। इन्हीं विचार और स्वतंत्रता के बल पर सूचना क्रान्ति/इण्टरनेट ने संचार की दुनिया को इस हद तक बदल डाला है कि मानव चेतना को प्रभावित करने की विकसित देष्ठों की क्षमता अप्रत्याष्ठित रूप में बढ़ गयी है। ऐसे राष्ट्रों ने मानव समाज में संवाद और संचार की प्रक्रिया में परिवर्तन ला दिया है। यह प्रक्रिया लोगों को इतनी सारी जानकारी दे रही है जितनी कि समझ से काफी परे है। इण्टरनेट द्वारा जारी सूचना क्रांति लोगों को जानकार बनाने के बजाए गलत सूचनाएँ अधिक दे रही है; और नये तरह से अज्ञानी बना रही है। लोग अपने ही परिवेष्ठा में सामाजिक व सांस्कष्ठतिक ष्ठारणार्थी बनते जा रहे हैं। सांस्कष्ठतिक क्षेत्रों में तो यह सबसे विनाष्ठाक सिद्ध हो रही है। सूचना हथियारों से सुसज्जित संस्कष्ठतियों ने अन्य सांस्कष्ठतिक अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। इण्टरनेट विकसित राष्ट्रों के लिए एक ऐसा बाजार लेकर आया है जिससे पिछड़े व विकासष्ठील राष्ट्रों के घर में खतरा बढ़ता जा रहा है। इन राष्ट्रों में अपनी आर्थिक, सामाजिक व सांस्कष्ठतिक विचारों का क्षरण स्पष्ट देखा जा सकता है। इण्टरनेट घष्ठा, झूठ, हिंसा, अष्ठलीलता व गैर जिम्मेदाराना प्रचार का भी माध्यम बन गया है। अपनी इस क्षमता को सीमित कर इण्टरनेट नि:संदेह उपयोगी हो सकता है।

मुद्रित माध्यमों पर प्रभाव- वैष्ठवीकरण का मुद्रित माध्यम पर प्रभाव स्पष्ट दष्टिगोचर हो रहा है। जहाँ तक समाचार पत्रों की बात है तो उनका पूरा कलेवर ही बदल गया है। इस समय सबसे ज्यादा ध्यान इस बात पर ही दिया जाता है कि समाचारों को कैसे ष्ठीघ्रता से प्रेषित किया जाए और जल्द से जल्द खबरों को अखबार के पन्नों पर उतारा जाये। अखबारों में सूचना को ज्यादा से ज्यादा तरजीह दी जाने लगी है। कई क्षेत्रीय अखबारों ने अपने नये संस्करणों को निकाल कर सूचनाओं के दायरे को अप्रत्याष्ठित ढंग से बढ़ा दिया है। अखबारों के रूप व तेवर में तेजी का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जहाँ पाठकों को विदेष्ठी खतरों, घटनाओं में अधिक दिलचस्पी नहीं होती थी आज जरूरत के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है। अखबारों में न केवल विदेष्ठी खबरों के लिए अलग पेज निर्धारित होने लगे बल्कि मुख्य पष्ठ्ठों पर भी ऐसी खबरें जगह बनाने लगीं। वैष्ठवीकरण के प्रभाव में आकर पत्रों में निवेष्ठा

बढ़ा है। पर निवेष्ठा अखबार के पाठकों में बिकने से उतना नहीं आया जितना विज्ञापन से। विज्ञापन पाने में जैसी होड़ और मारामारी आजकल चली है वैसी पहले कभी नहीं थी। विज्ञापनों ने समस्त सामाजिक व सांस्कष्तिक मर्यादाओं को इस तरह ध्वस्त कर दिया कि हमारे विचार एवं चिन्तन पूरी तरह बदल गये हैं। समाचारों में भी एकरूपता परिलक्षित नहीं होती। समाचारों को उत्तेजक व सनसनीखेज बनाने के चक्कर में मानवीय मूल्यों का ह्रास स्पष्ट देखा जा सकता है। विज्ञापन अब ह्रास सिर्फ विज्ञापन विभाग की चिन्ता न होकर पूरे अखबार का ही बड़ा सरोकार बन गया है। विदेष्ठी निवेष्ठा से कई लघु समाचार पत्र या तो बंद हो गये या बन्द होने के कगार पर हैं। भाषाओं का अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट झलकता है। विभिन्न पत्रों में समाचार मूल्यों की तुलना से प्रसार पर अधिक बल दिया जाने लगा। खबर देने व उसकी पुष्टि की तुलना से इस बात पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा कि किस तरह यह पाठकों तक पहले पहुँचे। अनेक समाचार-पत्र सामाजिक दायित्व के निर्वाह के नाम पर अधिक से अधिक लाभ कमाने की होड़ में लगे हैं। पाठकों की अपेक्षाओं और समाचार पत्र के संचालकों की व्यावसायिक प्राथमिकताओं में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ गयी है। समाचार-पत्र उद्योग बन गया है। किसी भी तरह अधिक से अधिक मुनाफा कमाना उनका लक्ष्य हो गया है।

वैष्ठवीकरण और मीडिया साम्राज्यवाद:- जनमाध्यम प्रौद्योगिकी के उदय और विकास में औद्योगिक सभ्यता की अभूतपूर्व भूमिका रही है। जनमाध्यमों के विकास को देखते हुए औद्योगिक विकास की अवस्था का अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। जहाँ चारों ओर मंदी, महँगाई बेरोजगारी और गरीबी बढ़ रही है वहाँ दूसरी ओर जनमाध्यमों का भयानक विस्फोट हुआ है। उपग्रह चैनलों, केबल टेलीविजन आदि के माध्यम से समूचा परिदष्ठय बदल चुका है। समूचे परिदष्ठय को बहुराष्ट्रीय माध्यम कम्पनियों ने घेर लिया है। सबसे आष्ठचर्य की बात यह है कि सरकार इसे प्रोत्साहित कर रही है। जनमाध्यमों में व्याप्त अराजकता ने माध्यम साम्राज्यवाद को स्वतंत्र भारत की जमीन पर पैर फैलाने का मार्ग प्रष्ठास्त कर दिया है। माध्यम जो संदेष्ठा दे रहे हैं, जिस तरह की संस्कष्ति परोस रहे हैं, हम ग्रहण कर रहे हैं- हम अपने स्वतंत्र चिन्तन से विमुख होते जा रहे हैं। आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा माध्यम साम्राज्यवाद के हमलों के हवाले हो गया है।

हमारे साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि हम साम्प्रदायिकता, पष्ठकतावाद आदि के खतरों से चिन्तित तो हैं पर इस माध्यम साम्राज्यवाद की अनदेखी कर रहे हैं, जबकि यह ज्यादा खतरनाक व विनाष्ठाकारी है। नब्बे के दष्ठाक के प्रारम्भ में माध्यम साम्राज्यवाद का जो पौधा रोपा गया था वह आज विष्ठाल वष्ठ के रूप में परिणत हो गया है।

माध्यम साम्राज्यवाद का तात्पर्य साधारणत: ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है जिससे हमारी स्वाभाविक चिन्तन, स्वतंत्र सोच-विचार व क्रिया-कलाप अपनी नहीं रहती। इन सभी चीजों पर जनमाध्यम का वर्चस्व स्थापित हो जाता है। वे अपनी तौर-तरीकों से हमें एक नया सोच, चिंतन व विचारधारा सौंपते हैं और हम स्वेच्छा से ग्रहण भी करते हैं। वर्तमान वैष्ठवीकरण के कारण ऐसे माध्यमों के पास भी उनकी अपनी सोच नहीं होती। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय हितों एवं सार्वभौमिक राष्ट्र की आकांक्षा के खिलाफ जाकर 'माध्यम साम्राज्यवाद' से लवरेज पत्र-पत्रिकाओं से समझौता करने की कोष्ठिाष्ठा में सक्रिय हैं। हमारी दिनचर्या में इनके द्वारा फैलाये जा रहे संदेष्ठों को आसानी से देखा जा सकता है। ये आयातित कार्यक्रमों और सस्ते मनोरंजन के नाम पर माध्यम साम्राज्यवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। ये कार्यक्रम अधिकांष्ठात: पष्ठिचम के विकसित देष्ठों द्वारा संचलित होते हैं। पष्ठिचमी सूचना-नीति अन्य राष्ट्रों पर पूँजीवादी व्यवस्था

और बुर्जुआ विचारधारा थोपने को आतुर है। माध्यम-साम्राज्यवाद का लक्ष्य नव-औपनिवेष्ठाक राजनीति से जुड़ा है। यह पूंजीवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ:

	पुस्तक/पत्रिका	**लेखक/सम्पादक**
1.	भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ	सच्चिदानन्द सिन्हा
2.	जनमाध्यम प्रौद्योगिकी और विचारधारा	जगदीष्ठवर चतुर्वेदी
3.	'विदुर' (जनवरी-मार्च, 2003)	अजीत भट्टाचार्य (सम्पादक)
4.	संचार माध्यम	सुभाष धूलिया (सम्पादक)

भारत में जाति-व्यवस्था उत्पत्ति और विकास

Mk- inhi dekj jko

भारत में सामाजिक वर्गीकरण का सिद्धान्त ऋग्वैदिक युग के अन्तिम चरण में प्रचलित हो चुका था। ऋग्वेद के दसवें मण्डल (पुरुष-सूक्त) में स्पष्टतः सामाजिक वर्गीकरण के अन्तर्गत चार वर्णों की प्रतिस्थापना दिखाई देती है।[1] यद्यपि कि इतिहासकार ऋग्वेद के प्रथम एवं दष्ठाम् मण्डल को प्रक्षिप्त मानते हैं।[2] किन्तु इतिहासकारों का एक वर्ग तो प्रथम मण्डल के साथ आठवें से दसवें तक के मण्डल को बाद का जोड़ा गया स्वीकार करता है।[3] ऋग्वेद के दूसरे से सातवें मण्डल में भी भारतीय समाज के वर्गीकरण का सिद्धान्त बीज रूप में उपस्थित है। ऋग्वेद के मंत्रों से जैसा कि ध्वनित होता है- समाज प्रधानतः जनजातीय था तथापि समाज में वर्ग विभाजन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी।[4] अनेक उद्धरणों से संकेत मिलता है कि ब्राह्मण-पुरोहित एवं राजन्य क्रमष्ठाः आत्मचेतन वर्गों का स्वरूप ग्रहण कर रहे थे। ऋग्वेद में ब्राह्मण ष्ठाब्द का प्रयोग पन्द्रह बार, क्षत्रिय का छः बार और वैष्ठय तथा ष्ठाूद्र का एक-एक बार हुआ है। ब्राह्मण ष्ठाब्द अनेक प्रसंगों में वंष्ठाानुगत पुरोहित के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[5] तो क्षत्रिय ष्ठाब्द अनेकत्र ष्ठाासक वर्ग के व्यक्तित्व का सूचक है।[6] ऋग्वेद में दिवोदास और सुदास, पुरुत्कुत्स एवं त्रसदस्यु जैसे वंष्ठाानुगत रूप से ष्ठाासन करने वाले राजाओं के उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि क्षत्रिय वर्ग ष्ठाासन से सम्बद्ध एक विष्ठोष वर्ग के रूप में संगठित हो रहा था। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि ब्राह्मण का आदर करने वाले राजा के लिए पष्ठवी समष्ठद्धष्ठाालिनी होती है तथा लोग स्वेच्छा से उसके समक्ष नतमस्तक होते हैं।[7] यह उल्लेख बाद के धार्मिक साहित्य में उल्लिखित ब्राह्मणों की श्रेष्ठता की याद दिलाता है। ऋग्वेद में 'वर्ण' ष्ठाब्द का तेईस बार उल्लेख हुआ है किन्तु यह अवष्ठय है कि इसका उल्लेख सर्वत्र सामाजिक वर्ग के अर्थ में ही नहीं हुआ है।

ऋग्वेद में वर्ण ष्ठाब्द का प्रयोग 'रंग' अथवा 'आलोक' के अर्थ में हुआ है।[8] वर्ण का प्रयोग ऐसे वर्गों के लिये भी किया गया है जिनके ष्ठारीर की त्वचा का रंग ष्ठयाम अथवा ष्ठवेत था।[9] ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में आर्य और अनार्य की अनेकता तथा मित्रता भी वर्ण के रूप में उल्लिखित है।[10] आगे चलकर यह ष्ठाब्द सामाजिक वर्गीकरण के लिए रूढ़ हो गया।

ऋग्वेद के अनेक प्रसंगों में ब्रह्म, क्षत्र और विष्ठा ष्ठाब्द का प्रयोग हुआ है जो निष्ठचय ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैष्ठय का ही पूर्वगामी रूप है। ऋग्वेद के एक प्रसंग में धष्ठव्रत क्षत्रिय तथा क्षत्र का साथ-साथ उल्लेख हुआ है।[11] ऋग्वेद में वैष्ठय एवं ष्ठाूद्र का प्रयोग मात्र एक-एक बार दष्ठावें मण्डल के पुरुष-सूक्त में हुआ है। इस अंष्ठा को मूल ग्रन्थ में बाद में जोड़ा गया माना जाता है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि पूर्व वैदिक युग में सामाजिक वर्गीकरण के चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का स्पष्टतः प्रतिपादन न हो सका था तथापि इसकी पूर्व पीठिका तैयार हो रही थी। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जैसे दो वर्ण का स्वरूप निर्धारित हो रहा था एवं विष्ठा चातुर्वर्ण्य के वैष्ठय का आधार बन रहा था।

उत्तर वैदिक युग में भौतिक एवं वैचारिक क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों की रचना इस युग के वैचारिक अधिष्ठान हैं। इस युग में अनेक सामाजिक आदर्ष्ठा एवं मूल्यों के प्रतिमान स्थापित किये गये, जो आगे चलकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था के आधार माने गये। उत्तर वैदिक युग में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का स्पष्ट स्वरूप निर्धारित हुआ। ऋग्वेद के दष्ठावें मण्डल पुरुष

* ikpk;& egkjk.kk irki egkfo|ky;] txy /kIM] xkj[kij

सूक्त में उल्लिखित चातुर्वण्य सिद्धान्त[12] को इसी युग का माना जाना चाहिए। यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का प्रतिपादन दिखायी देता है।[13] ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त के समान ही यहाँ चारों वर्णों को ब्रह्मा के चारों अंगों से उत्पन्न माना गया है।[14] इस युग में कृषि के क्षेत्र में प्रगति से खाद्य समस्या का समाधान होने के साथ ही अधिशेष उत्पादन के कारण विविध व्यवसायों का सृजन हुआ और इस प्रक्रिया में अनेक व्यावसायिक वर्ग उत्पन्न हुए हैं। आर्थिक प्रगति ने ब्राह्मणों, राजन्यों (क्षत्रियों) को भी पहले से अधिक समृद्ध और सम्मानित बना दिया क्योंकि इन दोनों ही वर्गों को क्रमशः दान और कर (बलि) में प्राप्त होने वाली धनराशि में भी वृद्धि हुई।[15] इन वर्गों की सामाजिक श्रेष्ठता ने विशा के साधारण किन्तु महत्त्वाकांक्षी सदस्यों को उद्विग्न किया होगा।[16] वस्तुतः प्रतिस्पर्धा, संघर्ष और सामाजिक अव्यवस्था के संभाव्य संकट को टालने के लिए वर्ण व्यवस्था, जो पहले से ही विकास की प्रक्रिया में थी, इस काल में दैवी-व्यवस्था के रूप में स्वीकृत हुई।[17] ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में कहा गया है कि वर्णों की उत्पत्ति उस विराट पुरुष के अंगों, मुख, बाहु, उरु और पद से हुई जिसके हजारों शीर्ष, सहस्रों नेत्र एवं पैर थे। जो विराट पुरुष भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।[18] इस प्रकार भारत का धार्मिक साहित्य वर्णों की उत्पत्ति के पीछे दैवी सत्ता का उल्लेख करता है। किन्तु यह तथ्यगत मत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः दैवीसत्ता से वर्णों की उत्पत्ति के सिद्धान्त प्रतिपादन के पीछे वर्ण व्यवस्था को स्वीकृति प्रदान कराना था। किन्तु प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के पीछे मात्र आर्थिक कारणों की स्वीकारोक्ति भी एकांगी परिकल्पना होगी, अतः यह मत भी पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता कि आर्थिक समृद्धि एवं उन पर आधिपत्य स्थापित करने की सोच ने वर्ण व्यवस्था को जन्म दिया। वैदिक युग भारतीय समाज का एक ऐसा युग है जबकि मानव अभी भी प्राकृतिक शक्तियों की कृपा को ही जीवन रक्षा का आधार मानता था।

अतः अभी भी दैवी स्वीकारोक्ति सर्वोपरि थी। तत्कालीन समस्त व्यवस्था के पीछे दैवी भाव निहित था। यद्यपि कि वर्ण-व्यवस्था तत्कालीन समाज के अनिवार्य वर्गीकरण की आवश्यकता से उत्पन्न हुई तथापि समाज के बढ़ते दायरे, अलग-अलग समूहों का सम्मिलन, कार्यों के प्रकार की बहुलता, मानव के स्वभाव एवं कर्म में भिन्न-भिन्न क्षमता एवं योग्यता का होना आदि अनेक स्वाभाविक कारणों ने वर्ण व्यवस्था को जन्म दिया तथा उक्त सभी कारणों के पीछे दैवी सत्ता के होने की अवधारणा ने वर्ण-व्यवस्था को भी दैवी स्वरूप प्रदान कर दिया। गुण-कर्म आधारित वर्ण-व्यवस्था वस्तुतः भारतीय मनीषियों के मौलिक चिन्तन की देन थी।

परवर्ती भारतीय साहित्य भी वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के पीछे दैवी तत्त्व के आरोपण की परिकल्पना का उल्लेख करता है। महाभारत में कहा गया है कि ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु (जंघा) से वैश्य और तीनों वर्णों के सेवार्थ पद अर्थात पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई।[19] भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है तथा मैं ही उनका कर्ता हूँ और मैं ही विनाशक भी।[20] मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्मा ने लोकवृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः मुख, बाहु, जंघा और चरण से उत्पन्न किया।[21] विष्णु पुराण के अनुसार भगवान् विष्णु के मुख, बाहु, जंघा और चरण से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।[22]

मत्स्य पुराण एवं वायु पुराण में भी वर्णों की उत्पत्ति इसी प्रकार बतायी गयी है।[23] वायु पुराण क्षत्रिय को भुजा के स्थान पर वक्ष से उत्पन्न होना बताता है। इस प्रकार भारतीय धार्मिक साहित्य परमपुरुष अर्थात् ब्रह्मा अथवा विष्णु से वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के मत का प्रतिपादन करते हैं। महाभारत में अन्यत्र वर्णों

के रंग का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की जिनका रंग क्रमशः श्वेत, लोहित (लाल), पीत (पीला) और असित (काला) था।[24] इस उल्लेख पर नीलकण्ठ की टीका में कहा गया कि वस्तुतः यह रंग गुण और कर्म का ही द्योतक है। श्वेत रंग का परिचायक सत्गुण, लाल रंग का रजोगुण, पीले रंग का रजोगुण और तमोगुण तथा काले रंग का परिचायक तमोगुण था। महाभारत में गुण-कर्म आधारित वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि सत्य, दान, द्रोहहीनता, अनशंसता, विनय, घृणाहीनता और तप जिसमें हो वही ब्राह्मण में न हो तो शूद्र-शूद्र नहीं और ब्राह्मण-ब्राह्मण नहीं।[25] महाभारत के वन पर्व में इस बात का उल्लेख है कि सत्य, दया, तप, दान, अहिंसा, और धर्म-नित्यता ही मनुष्य के लिए फलदायक है, जाति अथवा वंश नहीं।[26] महाभारत में एक स्थान पर कहा गया है कि शूद्रों का सेवा मात्र ही कर्म नहीं था, अब वे वाणिज्य और पशु कर्म भी करने लगे थे।[27] युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न करते समय शूद्र प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया था।[28]

स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था का आरम्भिक स्वरूप गुण-कर्म आधारित सामाजिक वर्गीकरण के सिद्धान्त पर तैयार हुआ था। जन्म के आधार पर नहीं, अपितु जन्म के बाद व्यक्ति के कर्म एवं गुणों के आध ार पर उसका वर्ण तय होता था। हाँ, यह कहना कठिन है कि यह आदर्श स्थिति समाज में कितने समय तक लागू रह पायी। क्योंकि उत्तर वैदिक काल के बाद से ही वर्णव्यवस्था का स्वरूप जन्म आधारित होने लगा। किन्तु यह कहना भी एकपक्षीय होगा कि बाद में फिर जन्म से ही वर्ण का निर्धारण होने लगा और पहले से निश्चित वर्णों के कर्तव्य थोपे गये। उत्तर वैदिक युग के बाद के भारतीय साहित्य में निरन्तर दो वर्ग दिखाई देते हैं। समाज का एक वर्ग वह है जो जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था जिसका वास्तविक स्वरूप आधुनिक जाति व्यवस्था है, का पोषक हुआ तो एक वर्ग सदैव ऐसा बना रहा तो सुधारवादी था और वह निरन्तर गुण-कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था की पुनर्स्थापना में लगा रहा।

उत्तर वैदिक युग के बाद के भारतीय साहित्य में वर्ण-व्यवस्था के इन दोनों स्वरूपों का दिग्दर्शन होता है। जन्म आधारित वर्ण विभाजन को स्वीकार करने वाले वर्ग के अनुसार दुराचारी ब्राह्मण परिवार जन्म के कारण ब्राह्मण ही था और सदाचारी शूद्र, शूद्र परिवार में जन्म के कारण शूद्र ही था। जबकि दूसरे वर्ग के अनुसार नीच ब्राह्मण शूद्र था और उच्च शूद्र ब्राह्मण था। वस्तुतः वर्ण व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप जो गुण-कर्म आधारित था, वह वैदिक काल के बाद ही आनुवंशिक होने लगा और निरन्तर बढ़ते इस जन्म आधारित वर्गीकरण की स्वीकारोक्ति ने वर्णव्यवस्था की आड़ में जाति व्यवस्था को जन्म दे दिया जो कालान्तर में भी वर्ण-व्यवस्था के नाम से ही प्रचारित रहा। कहा जा सकता है कि वैदिक युगीन सामाजिक वर्गीकरण 'वर्णव्यवस्था' है तो वैदिकोत्तर युगीन सामाजिक वर्गीकरण जाति 'व्यवस्था' का सूचक है। अतः वैदिकोत्तर सामाजिक वर्गीकरण को वर्णव्यवस्था का नाम देना एक भ्रामक तथ्य है जिसका निराकरण तथ्यपरक इतिहास के लिए आवश्यक है।

जाति व्यवस्था की उत्पत्तिः

वैदिक युगीन गुण-कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था वैदिकोत्तर युग में आनुवंशिक होने लगी। सूत्र, उपनिषद् एवं महाकाव्य वर्ण एवं जाति व्यवस्था के द्वैध को सूचित करते हैं। इन साहित्यों में एक तरफ वैदिक युगीन वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन होता हुआ दिखाई देता है तो अन्यत्र जन्म के कारण वर्ण-निर्धारण (जाति) का प्रयास भी द्रष्टव्य है। समाज का ऊर्ध्वाधर वर्गीकरण इसी युग में संकल्पित हुआ। अतः वर्णो के स्तरीय निर्धारण अर्थात् उच्च एवं निम्न वर्ण के क्रम का प्रतिपादन भी इसी युग में परिलक्षित होता है। यह युग एक प्रकार से वर्ण-व्यवस्था का जाति व्यवस्था में परिवर्तन का सन्धिकाल था। इस युग में

ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठता का मत प्रतिपादित किया जाने लगा। तैत्तिरीय ब्राह्मण में ब्राह्मण को दिव्य वर्ण का उल्लिखित किया गया है।[29]

ब्राह्मण अब देवता माना जाने लगा।[30] अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्राह्मण को कष्ट मिलने पर जल में टूटी हुई नाव की तरह राजा का राज्य विनष्ट हो जाता है।[31] धार्मिक कृत्यों पर ब्राह्मण वर्ग के एकाधिकार की सूचना भी मिलने लगती है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि पुरोहित के बिना अर्पित की गयी राजा की आहुतियाँ देवताओं को स्वीकार नहीं थी।[32] राजसूय यज्ञ जैसे समारोहों की सम्पन्नता के लिए ब्राह्मण का स्तुतिगान अनिवार्य हो गया। ष्ठातपथ ब्राह्मण के अनुसार तो ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त सत्ता से ही राजा ष्ठासन करता था।[33] ष्ठातपथ ब्राह्मण में कहा गया है ब्राह्मण परिवार में जन्मा बालक भी श्रेष्ठ है।[34] छान्दोग्य उपनिषद् में सत्यकाम जाबालि की कथा में हारिद्रुमत गौतम द्वारा स्पष्टत: जाबाल से वंष्ठा (गौत्र) पूछने पर उल्लेख है।[35]

इस प्रकार ब्राह्मण अब वंष्ठानुगत होने लगे थे और चारों वर्णो में सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे थे। इसी प्रकार राज्य-ष्ठासन क्षत्रियों का विष्ठेषाधिकार बना और वे ब्राह्मण के बाद दूसरे स्थान पर परिगणित किये गये। यही कारण था कि ब्राह्मण और क्षत्रिय के बीच इस युग में सर्वोच्चता को प्राप्त करने की प्रतिद्वन्द्विता छिड़ गयी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में सर्वोच्चता के क्रम का निर्धारण हुआ और ब्रह्म-क्षत्र प्रतिस्पर्द्धा इसी का परिणाम था। वैष्ठय और ष्ठूद्र को क्रमष्ठा: तीसरा और चौथा स्थान दिया गया। स्पष्ट है कि इसी क्रम निर्धारण सिद्धान्त के परिणामस्वरूप वर्ण व्यवस्था वंष्ठानुगत हुई और जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी।

जाति ष्ठाब्द का सर्वप्रथम उल्लेख निरुक्त में कृष्णा जाति के अर्थ में हुआ है।[36] बृहदारण्यक उपनिषद् में वैष्ठय के लिए 'जाति' ष्ठाब्द का उल्लेख हुआ है।[37] पाणिनि की अष्टाध्यायी में ष्ठाब्दोत्पत्ति की व्याख्या करते हुए जाति ष्ठाब्द का उल्लेख है।[38] पतंजलि ने महाभाष्य में 'जाति' को जन्म से संयुक्त करते हुए उल्लिखित किया है।[39] कात्यायन श्रौतसूत्र में जाति ष्ठाब्द का प्रयोग परिवार के लिए किया गया है।[40] गौतम धर्मसूत्र एवं आपस्तम्भ सूत्र में भी जाति ष्ठाब्द का उल्लेख पृष्ठक जन समुदाय के अर्थ में किया गया है।[41] मनु ने जाति ष्ठाब्द का उल्लेख द्विजाति, हीनजाति के अभिप्राय में करने[42] के साथ-साथ ब्राह्मण के लिए भी जाति ष्ठाब्द का प्रयोग किया है।[43] निष्ठचय ही दूसरी ष्ठाताब्दी ईसा पूर्व से जाति ष्ठाब्द का प्रयोग वर्ण के अर्थ में होने लगा। इस युग तक आते-आते वर्ण-व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था की एकरुपता स्वीकार कर ली गयी।

1. ऋग्वेद, 10. 90.12
2. ष्ठार्मा, रामष्ठारण; प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृष्ठ-29
3. कीथ, ए.बी.; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, सम्पादक-इ.जे.रैप्सन, भाग-1, पृष्ठ-69
4. राव, राजवन्त; प्राचीन भारत में धर्म और राजनीति, पृष्ठ-57
5. द्र. वैदिक इण्डेक्स, भाग-2, पृष्ठ-248
6. ऋग्वेद-4.12.1; 104. 13; 10. 109. 3
7. ऋग्वेद-4. 50. 8
8. ऋग्वेद, 1.73.7; 2.3.5; 9.97.15; 9.104.4; 9.105.4; 10.124.7
9. ऋग्वेद, 2.2.4
10. ऋग्वेद 1.179.6; 3.34.9

11. ऋग्वेद 8.25.8
12. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कष्टः।
    रुरुतदस्य यद्वैष्ठयः पद्भ्यां ष्ठूद्रोऽजायत।। ऋग्वेद, 10.90.12
13. यजुर्वेद, 31.10.1; 31.3.5; अथर्ववेद, 3.5.7,
14. यजुर्वेद, 3.10.1
15. ष्ठार्मा, रामष्ठारण; प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पष्ठ-341-43
16. ष्ठाव, राजवन्त; प्राचीन भारत में धर्म एवं राजनीति, पष्ठ-101
17 ऋग्वेद् -10,90,12,1; अथर्ववेद, - 16,6,6,; बाजसेनेयी संहिता, - 31,1
18. सहस्रष्ठीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
    पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं पच्चभव्यम्।। ऋग्वेद, - 10.90.12.1
19. ब्राह्मणो मुखतः सष्ठो ब्राह्मणो राजसत्तम।
    बाहुभ्यां क्षत्रियः सष्ठ एवं च उरुभ्यां वैष्ठय एवच।।
    वर्णानां परिचर्यार्थ त्रयाणां भरतर्षभ।
    वर्णष्ठचतूर्थः संभूतं पद्भ्यां ष्ठूद्रो विनिर्मितः।। महाभारत, ष्ठांतिपर्व। 122,4-5
20. चातुर्वर्ण्य मया सष्टं गुणकर्मविभागष्ठाः।
    तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्त्तारमव्ययम्।। गीता, 4.3
21. लोकानां तु विवष्द्ध्यर्थ मुखबाहूरूपादतः।
    ब्राह्मण, क्षत्रियं, वैष्ठयं, ष्ठूद्रं च निरवर्त्तयत्।। मनुस्मष्ठि, 1.31
22. त्वन्मुखात् ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोः क्षत्रमजायत।
    वैष्ठयास्तवोरुजाः ष्ठूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्रगताः।। विष्णु पुराण, 1.12.63-64
23. वामदेवस्तु भगवानसष्ठान्मुखतो द्विजान।
    राजन्मयान्सष्ठाद्बाहोर्विट्ष्ठूद्रानुरुपादयोः।। मत्स्य पुराण, 4.28
    वक्त्रादस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता यद्वक्षतः क्षत्रिया पूर्वभागे।
    वैष्ठयाष्ठचोरोर्यस्य पद्भ्यां च ष्ठूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूता।। वायु पुराण, 9.113
24. ब्रह्मणानां तु सितो क्षत्रियाणां तु लोहितः।
    वैष्ठयानां पीतको वर्ण ष्ठूद्रणामसितस्था।। महाभारत, ष्ठांतिपर्व, 188.55
25. सत्यं दानमथाद्रोहं आनष्ठांस्यं त्रया घष्ठा। तपष्ठच दष्ठयते यत्र स ब्राह्मण इति।।
    ष्ठूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते। न वै ष्ठूद्रो अपेच्छद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः।।
    महाभारत, ष्ठांतिपर्व, 189,4-8; 89. 4-8
26. महाभारत, वनपर्व, 181; 42-43
27. महाभारत, 12.292, 2-4
28. महाभारत, 2.33.41
29. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.2.6
30. तैत्तिरीय संहिता, 1.7.31; तैत्तिरीय आरण्यक, 2.15
31. अथर्ववेद, 5.19.8.15
32. ऐतरेय ब्राह्मण, 40.1

33. ष्ठातपथ ब्राह्मण, 5.3.4.20
34. ष्ठातपथ ब्राह्मण, 1.2.6
35. छान्दोग्य उपनिषद्, 4.4.1-2
36. अग्नि चित्वा न रामामुपेयात्। रामा रमणायोपेयते न धर्माय कष्ठण जातीया।। निरुक्त, 12.13;
37. बष्ठदारण्यक उपनिषद, 1.4.12
38. अष्टाध्यायी, 5.4.9
39. जननेन या प्राप्यते सा जातिः। महाभाष्य, 5.3.55;
40. कात्यायन श्रौत सूत्र, 4.1.4
41. गौतम धर्मसूत्र, 111.30; आपस्तम्भधर्मसूत्र, 2.31
42. मनुस्मष्ठि, 3.15
43. जातिमास्त्रोपजीव वा कामं स्याद ब्राह्मण ब्रुवः। मनुस्मष्ठि, 8.20
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैष्ठयस्त्रयो वर्णाद्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु ष्ठाूद्रो नास्ति तु पंचमः। मनुस्मष्ठि, 10.4

FOOD THAT PROVIDES NUTRITION AND PREVENTION OF DISEASE

NEUTRACEUTICALS

DR. ABHAY KUMAR SRIVASTAVA
MAHARANA PRATAP PG COLLEGE
JUNGLE DHUSAN, GORAKHPUR

A food or part of a food that provides medicinal or health benefits, including the prevention and traatment of disease is termed neutraceutical. A nutraeutical may be a naturally nutrient-rich or medicinally active food, such as garlic or soybeans, or it may be a specific component of a food, such as the omega-3 fish oil that can be derived from salmon and other cold-water fish. Neutraceuticals use is a conscious use of mix food item that can serve as food in one hand and Have a pharmaceutical value on the other hand. The two common problems are obessity and stressful living in Modern day society. The first twenty seven slides deals with obessity besides food value and the last ten are stress moderator besides food value

1. Cinnamon

Studies suggest cinnamon may have a stabilizing effect on blood sugar levels. This could curtail appetite, particularly in people with type 2 diabetes. Nearly everyone can benefit from cinnamon in its traditional role. Stir some into your coffee, tea, or curd to add sweetness without adding calories.

2. Beans

Beans deliver a nutritional triple punch. They're a vegetable a protein, and a great source of fiber. This means they'll help us stay full for the price of very few calories.

3. Curd

What makes curd a delicious tool for weight loss is its protein content. "Protein takes longer to leave the stomach," says sports nutritionist. "That keeps us satisfied longer." As a bonus, the body burns more calories digesting protein than carbohydrates. Non-fat, low-fat, and low-sugar types keep a slim profile. Use of skimmed milk suggested.

4. Watermelon

Foods that are high in water content take up more room in the gut. This signals the body that you've had enough to eat and leaves less room for other foods. Many raw fruits and vegetables are chock-full of water and nutrients, but low in caloties. Watermelon is a great example. it's a rich source of the antioxidant lycopene and adds some vitamins A and C to our day, too.

5. Pears and Apples

Pears and apples are also high in water content. Eat them with the peels for extra fiber, which will keep you full longer. It is recommends whole frutis rather than fruit juice. Not only do you get more fiber, you have to chew the fruits. This takes longer and requires some exertion. You actually burn a few calories chewing, as opposed to gulping down a smoothie.

6. Grapes vs. Raising

The value of water content becomes clear when you look at two cups of grapes vs.$^{1}/_{4}$ cup of raisins. Either choice has a little more than 100 calories, but the larger portion of grapes is likely to feel more satisfying. still, it is said, dried fruit has an interesting texture. When used sparingly, a few raisins or dried cranberries can make a salad more appealing.

7. Berries

Like other fruits, berries are high in water and fiber, which can keep you full longer. But they have another benefit--they're very sweet. This means berries can satisfy your sweet tooth for a fraction of the calories you would take in gobbling cookies or brownies. Blueberries stand out because they're easy to find and loaded with antioxidants.

8. Raw vegetables

Raw vegetables make an outstanding snach. They satisfy the desire to crunch, they're full of water to help you feel full, a source of minerals and vitamins. Full of water and least calories.

9. Sweet Potatoes

Think of the typical toppings on your baked potato--butter, sour cream, maybe cheese and bacon bits. If you substitute a sweet potato, you might not need any of that. Baked sweet potatoes are so full of flavor, they require very little embellishment. This can save you loads of calories. As a bonus, sweet potatoes are packed with potassium, beta carotene, vitamin C, and fiber and they're low in calories. Half a cup of diced celery has just eight calories.

10. An Egg

A Studies suggest eating protein in the morning will keep your hunger at bay longer than eating a bagel or other carbohydrates. One egg has only 75 calories but packs 7 grams of high-quality protein, along with other vital nutrients. Our body will burn more calories digesting eggs than a carbohydrates-heavy breakfast. If you have high cholesterol, check with your doctor about how many eggs you can eat per week.

11. Coffee

It sounds too good to be true--one of your favorite beverages may actually help revamp the metabolism and help you lose weight. The coffee does stimulate the metabolism--a little. Cautions are that the effect is small and is easily cancelled out by the extra calories in a coffee nut.

12. Oatmeal

Oatmeal has three things going for it: fiber-rich whole-grain oats, lots of water, and it's hot. It is said this is a very filling combination. Hot food takes longer to eat, and all that liquid and fiber will help you feel full longer. "Don't buy the one that's already sweetened," rather "You can choose how to flavor it." Stirring in cinnamon or nutmeg will give you a sweet taste with less suger.

13. Crisp breads

Whole-grain rye crackers, sometimes called crisp breads, offer a low-fat, fiber-packed alternative to traditional crackers. Research suggests people who replace refined grains with whole grains tend to have less belly fat. Whole grains also provide a richer assortment of plant nutrients. This doesn't just apply to crackers. You can get the same benefits by switching to whole-grain breads, **cereals, and pastas.**

14. Coarse grain

A standout whole grain is millet and piotechnologically develoved wheel, the type found in. It's high in fiber and protein, but low in fat and calories. That helps you fill up with a minimum of calories. The rich taste makes it satisfying. "It's flavorful, so we don't nee to add a lot of oil,". To turn this dish into a meal, we should add beans and stirring in extra tomato, cucumber, and parsley is suggested.

15. Soup

Soup--we're talking broth-based, not creamy--is a dieter's friend in several ways. It's full of water, which fills you up with the fewest possible calories. It's hot, which prevents you from guzzling it down too quickly. When eaten before a meal, soup can take up space that might have gone to higher calorie foods. You can also make a satisfying, low-calorie meal out of soup alone by

adding chicken, fish, cut-up vegetables, or beans

16. Salad

Another way to fill up before a meal is by eating salad. Lettuce has plenty of water content to take up space in the stomach. That leaves less room for fattier foods that might come later in the meal. Make your salad interesting by adding a variety of fruits and vegetables or grated cheese. But be careful about dressing, Which can add a lot of caloties. It is recommended that using salsa, hummus, or black bean dip as dressing.

17. Vinegar

If You dress your salad with oil and vinegar, you may get another fat-fighting benefit. More research is needed, but some studies suggest vinegar may help the body break down fat. Whether or not this effect pans out, It is said vinegar is a good choice. It's full of flavor that can make salad more satisfying--and it has no calories.

18. Nuts

Nuts are an excellent way to curb hunger between meals. They're high in protein, fiber, and heart-healthy fats. Studies suggest nuts can promote weight loss and improve cholesterol levels when eaten in moderation. The key is to "be careful with quantity," however, "Choosing something in a shell, So you have to work harder and slow down."

19. Air-Popped popcorn

Three cups of plain, air-popped popcorn may seem like a whole lot, but the calorie content is low. All that air adds volume without adding fat or sugar. "When people are looking to snack, they don't stop at 10 potato chips. Thay want to have their fill, and a big bowl of popcorn delivers. It's visually satisfying, plus it takes time to eat."

20. Skimmed milk

Plenty of protein and calcium with none or the fat found in whole milk. And even though it's fat-free, skim milk can help you feel full. It takes longer to leave the stomach than drinks with less protein, There's also evidence that skim milk and other nonfat dairy foods may promote weight loss, particularly around the midsection. More research is needed to confirm this effect.

21. Lean Meat

As we've seen, protein can keep you full longer and burn more calories during digestion. But you want to choose your protein carefully. Dark meat tends to be high in fat, which could cancel out some of the benefits. Skinless chicken breast is a great choice. And cuts of beef can make the grade. Flank steak, eye of round, and top sirloin are extra-lean with less than 4 grams of saturated fat per serving. Just stick with a 3-to 4-ounce protion.

22. Fish

One of the best sources of protein is fish. Studies show it's more satisfying than chicken or beef, probably because of the type of protein it contains. Most fish is low in fat, and the exceptions usually have a healthy form of fat--omega-3 fatty acids. Omega-3's, which are found in salmon, herring, and other fatty fish, appear to help protect against heart disease and other chronic conditions.

Stress Management Diet

Stress management can be a powerful tool for wellness. There's evidence that too much pressure is not just a mood killer. People who are under constant stress are more vulnerable to everything from colds to high blood pressure and heart disease. Although there are many ways to cope, one strategy is to eat stressfighting foods, Read on to learn how a stress management diet can help.

Stress-Busting Foods:How They Work

Foods can fight stress in several ways. Comfort foods, like a bowl of warm oatmeal, actually

boost levels of serotonin, a calming brain chemical. Other foods can reduce levels of cortisol and adrenaline, stress hormones that take a toll on the body over time. Finally, a nutritious diet can counteract the impact of stress, by shoring up the immune system and lowering blood pressure.

There are many different classes of functional foods and each class offers targeted health benefits. The most common bioactive ingredients in foods that have been associated with health benefits are amino acids, plant phenolics, antioxidants, botanicals, dietary fibres, enzymes, fat and oils, essential fatty acids, prebiotics, probiotics, proteins, plant proteins and soy. Some stress fighting product are mentioned below.

1. Milk

Another bedtime stress buster is the time-honored glass of warm milk as a remedy for insomnia and restlessness. Researchers have found that calcium eases anxiety and mood swings linked to PMS. Dietitians typically recommend skim or low-fat milk.

2. Complex Carbohydrates

All carbogydrates prompt the brain to make more serotonin. For a steady supply of this feel-good chemical, it's best to eat complex carbs, which are digested more slowly. Good choices include whole-grain breakfast cereals, breads, and pastas, as well as old-fashioned oatmeal. Complex carbs can also help you feel balanced by stabilizing blood sugar levels4

3. Simple Carbs

Dietitians usually recommend steering clear of simple carbs, which include sweets and soda. But these foods can provide a fast fix for a mood swing and short-term relief of stress-induced irritability. Simple sugars are digested quickly, leading to a spike in serotonin. But remember to limit your intake of simple sugars and sweets.

4 Oranges

Oranges make the list for their wealth of vitamin C. Studies suggest this vitamin can reduce levels of stress hormones while strengthening the immune system. In one study done in people with high blood pressure, blood pressure and cortisol levels (a stress hormone) returned to normal more quickly when people took vitamin C before a stressful task.

5. Spinach

Pepeye never lets stress get the best of him--maybe it's all the magnesium in his spinach. Too little magnesium may trigger headaches and fatigue, compounding the effects of stress. One cup of spinach goes a long way toward replenishing magnesium stores. Not a spinach eater? Try some cooked soybeans or a filet of salmon, also high in magnesium. Green leafy vegetables are a rich source of magnesium.

6. Fatty Fish

Keep stress in check, make friends with fatty fish. Omega-3 fatty acids, found in fish like salmon and tuna, can prevent surges in stress hormones and protect against heart disease, mood disorders like depression, and premenstrual syndrome. For a steady supply of feel-good omega-3s, aim to eat3 ounces of fatty fish at least twice a week.

7. Black Tea

Research suggests black tea can help you recover from stressful events more quickly. One study compared people who drank 4 cups of tea daily for six weeks with people who drank a tea-like placebo. The real tea drinkers reported feeling calmer and had lower levels of cortisol after stressful situations. When it comes to stress, the caffeine in cofee can boost hormones and increase blood pressure.

8. Pistachios

as well as other nuts and seeds, are a great source of omege-3 fatty acids. Eating a handful of

pistachios, walnuts, or almonds every day may help lower your cholesterol, reduce inflammation in the arteries of the heart, lower the risk of diabetes, and protect you against stress.

9. Avocados

One of the best ways to reduce high blood pressure is to get enough potassiumand half an avocado has more potassium than a medium-sized banana. In addition, guacamole offers a nutritious alternative when stress has you craving a high-fat treat.

10. Almonds

Almonds are chock full of helpful vitamins. There's vitamin E to bolster the immune system, plus a reange of B vitamins, which may make the body more resilient during bouts of stress such as depression. To get the benefits, snack on a quarter of a cup every day.

11. Raw Veggies

Crunchy raw vegetables can help fight stress in a purely mechanical way. Munching celery or carrot sticks helps release a clenched jaw, and that can ward off tension.

12. Bedtime Snack

Carbs at bedtime can speed the release of serotonin and help you sleep better. Heavy meals before bed can grigger heartburn, so stick to something light like toast and jam.

13. Herbal Supplements

There are many herbal supplements that claim to fight stress. One of the best studied is St. John's wort, which has shown benefits for people with mild-to-moderate depression. Although more research is needed, the herb also appears to reduce symptoms of anxiety and PMS. There is less data on valerian root, another herb said to have a calming effect asgandh, harre, Sarpgandha and Poppy are some reputed medicinal plants which should be it included infood right the strem can be relieved.

Conclusion:
1. Food content can be disigne or tailor made to obtain health berifit.
2. Biological assience has moved much ahead of mineral and ritamins. There are new reports of anti oxidants, Pheelics, Lycopene and dozen of other secondary uselaboliter with medicinal proprity are known. There is need of incupartity there in food habit to prevent disease.
3. Bio-technological companics are required to manipulate and articulate there bioactive principles in our common food.
4. Re orentation of Agriculture in this direction can bring revoltion in attaining health for all.

REFERANCES

1. Aggarwal, B.B. et al. (2009). "Molecular targets of nutraceuticals Derived from diet: Potential role in suppression of inflammation and tumorigenesis," Experimental Biology and Medicine (2009) 234 (8) 825-49.
2. Pathak, Y.V. (Editors 2010.) Handbook of nutraceuticals. In ingredients, formulations and application.
3. Shahidi, F. and Naezk, M. (Eds 2003) Phenolics in food and nutrition.
4. Shahid, F. and Weerasingha, D.K. (Eds 2004) Neutraceutical Beverage: Chemistry Nutri tion and Health effect American Chemical Society.
5. Weingartner, O.et al. 2008. Controversial role of plant sterole ester in the management of disese. Europian Heart journal
6. Brower, V. (1998). Neutraceuticals: Poised for a healthy slice of health care market. Nature Biotechnology. 16 (8).

7. Shibamoto, T.et al., (eds 2008) Functional food and Health. ACS symposium, P-993.
8. Wildman, R.E.C., (2001). Handbook of nutraceutical and functional foods. CRC Series in modern.
9. Nutrition. Kalra, E.K. (2003). Nutraceuticals: Definition and Introduction. AAPS Pharma Science 5 (3):P-25.

Religion and Fertility: A study of Gorakhpur District

PURUSHOTTAM PANDEY
MAHARANA PRATAP PG COLLEGE
JUNGLE DHUSAN, GORAKHPUR

The recent debate on the growth and population of the various religious groups has some-what overshadowed the valuable data generated by the Census of India on these groups. It is necessary to analyze the issue of population growth rate of different religious groups in proper perspective to solve the confusion related to this controversy. The Censes of India is the only source of information on population growth rate of different religions. This information is collected in respect of every individual religion in the country. Though India is a secular country data on religion are necessary for socio-economic studies so that the social and economic trend by each religious group may be assessed. The wide variety of data collected by the Census organization speaks volumes about our multicultural society.

The Census of India has been collecting and publishing informaion on the size of each religious group at the national and sub-national levels once every 10 year, since 1972. The population growth and economic-devalopment ae relared with one another and rapid population growth is detrimental to economic development. ;Balance between the two must be achieved in order to have a respectable review of the human beings. However, the population growth, too, has largely been affected by economic development of a nation. The population growth is higher in under-developed countries than in the developed ones, but, the standard of living in underdeveloped countries is unsatisfactory. It is a well known fact that if people are uneducated and poor they give birth to more children assuming that the children will fetch an income for the family when they are grown ups. Thus, an increase in the number of children per family adversely affects the economy of the country.

Based on 2001 data, the census organization has put out information on the population of each religion with information on children on the age group 0-6 years as an indicator of fertility, literacy levels and work participation. For the first time the Census of India has made a religion based cross classification of population, thus, fulfilling the national minority commission's requirement that reigion data be classified by various socio-economic characteristics of the religious groups. However, the terms "adjusted" and "unadjusted" data used in the religion report need explanation.

The issue of religious differentials in population growth in india must be addressed and examined thoroughly. This is the reason why we have selected in the proposed study the Gorakhpur district of eastern U.P. for a detailed study.

The problem:

Anlaysis of the data from the second National Family Health Survey (NFHS) shows that differentials in fertility among Hindus and Muslim are not explained only by socio-economic characterstics. However, the differences appear to be a passing phase in the process of fertility transition. Religious communities in India have experienced substantial fertility decline because of contraceptive practice that is well accepted by them. It is also expected that the fertility levels among countries may converge overtime. It is a fact that the census organization showed a rise in

the growth rate of Muslims from 34.5% in 1981-91 to 36% in 1991-2001.

Knowing the absolute increases in population between the two censuses of each religious community helps in understanding and interpreting the growth rates better. The absolute increases in population and decadal growth rate by religious community are given as under:

Table-1
Population and Decadal Growth Rate by Religious Communities
INDIA 1981-2001
(Ex-Assam, J&K)

Religious Communities	Absolute Increases In Population		Decadal Growth Rate	
	1981-1991	1991-2001	1981-1991	1991-2001
All	156889206	175841434	23.8	21.5
Hindus	124505159	134697636	22.8	20.0
Muslims	23494790	27931536	32.9	29.3
Christians	2729900	4177211	17.0	22.1
Sikhs	3298781	2742805	25.5	18.9
Buddhists	1673296	1486899	36.0	23.2
jains	141065	866517	4.0	26.0
Others	364884	3485405	13.2	111.3

Tabel-1 culled from census reports shows the increase in the population of religious communities in India during 1981-91 and 1991-2001. The decadal growth rates are shown in the last two columns of the statement. The percentage distribution of population by religion is given in the following table:

Table-2
Percentage distribution of population by religious communities in India 1981-2001 census

Religious Communities	Percentage distribution		
	1981	1991	2001
All	100	100	100
Hindus	82.1	82.4	81.4
Muslims	10.9	11.7	12.4
Christians	2.5	2.3	2.3
Sikhs	2	2	1.9
Buddhists	0.7	0.8	0.8
Jains	0.5	0.4	0.4
Others	8.4	0.4	0.7

The Sikh population has recorded a lower growth rate during 1991-2001. The growth rate of Hindu population has declined in 1991-2001 as compared to what it was in the earlier decade. The Buddhist population has followed a similar trend. The Muslim growth rate has declined in 1991-2001 from its level in 1981-91. The Christian growth rate has shown an upward trend in 1991-2001 Compared to the previous decade. The jain population has registered a higher growth rate in 1991-2001. The caegory of other region has emerged as a sizable entity in 2001.

The percentage composition of the Hindu population at the national level has declined by about one percent during 1991-2001.

The prevalent belief, ignorance illiteracy, lack of awareness about the population growth, superstition and religious aspects are the major components to increment in the population growth rates. Fertility goes down when marriage takes place at a leter stage, but, contrary to this, people living in this area have developed the concept to entangle their daughter in marriage even before they are adult. Early marriage increases the population because they start giving birth to children before their appropriate age for marriage.

Further, within a country or region, fertility is known to vary over socioeconomic groups. The more educated have fewer children than the less educated and the urban population has fewer children than their rural counterparts. Fertility also varies by religion, Catholic Protestant differences have been extensively discussed in the West. Christian-Jewish, Christian, Muslims and Muslim-Buddhist differences in various countries are noted. (Freedom and Whelpton 1961, Jones and Nortman 1968, Goldschiees and Unlenberg 1969, Goldstain 1973, Chaudhary 1971, Chamie 1977). In india there is evidence that fertility is higher among Muslims than among other major religions (Visaraa 1974, Balsubhramanian 1984, Das and Pandey 1985). This has been observed from the long and recent data, and surveys Confirm the fact. The National Family Health Survey (NFHS) gives estimates of the total fertility rates (TFR)-the number of births a woman would have on average if the recent fertility schedule were followed.

According to the national family Health Survey-1 Conducted in 1992-93, the TFR for the preceding three year was 3.30 for Hindus, 4.41 for Muslims, 2.87 for Christians and 2.43 for sikhs (IIPS. 1995) The National Family Health Survey-2 Carried out in 1998-99 showed lower fertility for all the religions but the order is maintained through with harrower gaps (IIPS & ORC Macro 2000). Overall fertility among Muslims is higher than Hindus, by about one percent, and, among, Sikhs and Christians lower than Hindus. A point to be noted is thatfertility in all the religious groups is muh lower than the high ferility levels in the past and thus the process of fertility transition is in progress. This process of transition must be analyzed.

It may be noted that the Hindu-Muslim demographic conflict created during the last decade or so, the (Unadjusted) population growth rate of six religious communities published in the first report on religion coul have been avoided (Banthia 2004). The difference between adjusted & unadjusted growth rete is unlikely to be clear to most people. The reported difference in the adjusted growth rate berween Hindus and Muslims was around 1.6% per annum as against the unadjusted growth reate difference of 9% per annum. Thus, a Hindu Muslim demographic conflict has been created by demographers and non-demographers. In accordance with the recent publications of religious demography of India, Indian religions Hindus, Sikhs, Buddhists and Janis- will become minority in the next five decades but some demographers are of the view that Muslims will add fewer number of people in absolute terms in comparison to Hindus in the next fifty years because of their smaller population base.

S. Irudaya Rajan has estimated Crude-Birth-Rates (CBR) and TFR for Hindus and Muslims for 594 districts of India and assesses the state and district level fertility differentials across the

country. He has found that there is a regional variation in fertility in India. The fertility rate is higher in the northern than in the southern and western parts, irrespective of religious affiliations.

Education creates awareness about the socio economic problems. It enhances occupational status, implants ideas about the appropriate age for marriages, and reduces desire for son. The educational development of Gorakhpur District is not very satisfactory and as a result, people have not developed clear concept about the gender. They think that it is necessary to give birth to a son; they like to have son because they think if they don't have a son they will not qualify for heaven after their death and the son can continue ancestral family tradition and customs. Such a conviction might lead to increase in fertility. Similarly people have developed a belief that every child born will start earning something down the age and even at a very young age by doing menial jobs. Fertility is also influenced by the occupation of the people. People with good occupation are likely to check fertility. If the couples are employed they are likely to give birth to fewer children as compared to unemployed couples, Most of the people in this region are engaged in agriculture and their fertility is high. Since people living in this area are poor, they are not aware about the modern means of entertainment. They think that working in field, eating and sleeping are their destinies. Poverty and low income of the family encourage child birth because it denies access to family planning methods and services.

In some religions where men are allowed to have more than one wife. they give birth to too many children. In particular Muslims do not have any restrictions on the number of marriages, therefore, people of this religious group get married to more than one wife and the number of children of these people is greater than the people belonging to other religious groups.

Realizing the above facts a study is required with a view to analyze the fertility behavior of people in Gorakhpur district. It may further be said that the development fo Gorakhpur district and Purvanchal region is possibel only if the problem of high fertility is solved.

Objective of the study:

The proposed study will be an effort to evaluate the fertility trands of different religious groups in Gorakhpur district of U.P. besides analyzing how various socio-economic and religious factors governing it. The objectives of the study are following:

1. To find out the socio-eonomic and demographic factors responsible for a high rete of fertility in the area proposed for research.
2. To provide information on fertility behavior of couples living in Gorakhpur district and to facilitate making of a sound population policy for the study area in particular as well as for the country as a whole.
3. To suggest a few schemes for the project area which may be useful in reducing birthrate. which is one of the basic objectives of the government and policy makers.
4. To evolve techniques for effective implementation of family planing programmed so that population growth may be checked and may remain under control.
5. To develop theoretical and empirical demographic models and paradigms to describs the demographic features and their trends in the area of the study.

Methodology:

To fulfill the above stated objectives of the study different types of data sources such as primary and secondary will be collectes from the universe of the study. For collecting primary data relating to the study. it is proposed to niclude 500 respondent families in the sample on stratified basis. Respondent families will be taken from various Tahseels of Gorakhpur district. They will be

chosen on the basis of religion, cast, economic groups etc. Multi-stage rendom sampling method will be applied to collect the required information. Census data and other original documents are also the main sources for collecting statistical information about the population. Census provides data at a given point of time and normally after a laps of 10 years. Various statistical methods and techniques will be used to analyze the data collected by the sample survey. The data will be tested for parametric and non parametric hypotheses related to fertility, religion and family planning.

Hypotheses of Study:

The tentative hypotheses of the present study are given as under:

1. Religion affects fertility.
2. Muslims population growth rate is higher than Hindus.
3. There is a moderate decline in the fertility of Muslim.
4. There is a strong correlation between differentials in Hindu-Muslims female literacy levels and differentials in TFR.
5. The high growth rate among Muslims compared to other communities is due to their fertil ity rates.
6. Fertility plays a major role in reducing growth rate to population.
7. International and inter-regional migration increases population growth rete.
8. Hindu-Muslim demographic conflict is created by non-demographers.
9. Indian religions Hindu, Sikh, Buddhist, Jain and christian will become minority in future.
10. Son preference affects the mean fertility positively.
11. Fertility declines with an increase in the educational levels of couples.
12. With an increase in the income level of family, fertility rete declines.
13. The occupational status and mean fertility are inversely related.
14. Mean fertility differs with urban-rural living.
15. Mean fertility differs with urban-rural living.
16. Wife's age at first birth affect fertility inversely.
17. Female education has positive impact on birth spacing.
18. Socio-economic status positively affects the female age at marriage.

Significance of the study:

India is a developind country. Its economy is predominantly rural. Eastern U.P. is densely populated and economically backward. The people are very poor. Their per capita income is low as compared to other developed states. As the study is focused on Gorakhpur keeping in view the development of this particular district. It will be much more helpful and useful for framing policies not only for this district and region but also for the country as a whole. It way be an aid to national planning machinery for development. The demographic and economic facts of the area of our study may also be a pointer to the state of socio economic and religious reality of a region at large.

Limitation of the study:

In any research limitation is sine-qua-non, because a researcher is not interested in the entire universe thoroughly due to lack of time, financial support, and, data collection during a given and fixed time-period. Fertility by religion and its control are the major issues of the study. Its findings may or may not be generalized.

Chaperization:

The study will consist of the following tentative chapters.

1. Introduction
2. Review of literature.
3. Profile of the area under study (Gorakhpur district) and methodology.
4. Hinduism and fertility.
5. Islam and fertility.
6. Christianity and fertility
7. Religion and family planning behavior.
8. Summary, conclusions and suggestions.

BIBILOGRAPHY

1. Banthia, Jayant Kumar (2004): 'First Report on Religion Data' Census of India 2001, Registrar General and Census Commissioner, India.
2. Bhat, P N M and S Irudaya Rajan (1990): 'Demographic Transition in Kerala Revisited', Economic and Political Weekly, Vol 25, Nos 35 and 36, pp 1957-86.
3. Bhat, P N M (1996): 'Contours of Fertility Decline in India: A District Level Study Based on the 1991 Census', Chapter 4 in K Srinivasan (ed), Population Policy and Reproductive Health, Hindustan Publishing Corporation, New Delhi, pp 96-177.
4. Guilmoto, C Z and S Irudaya Rajan (2001): 'Spatial Pattern of Fertility in Indian Districts', Population and Development Review, Vol 27, No 4, pp 713-38.

- (2002): 'District Level Estimates of Fertility from India's 2001 Census', Economic and political Weekly, Vol XXXVII, No 7, pp 665-72.
(2005): Fertility Transition in South India, Sage Publications, New Delhi.

5. IIPS (1995): National Family Health Survey (MCH and Family Planning), India, 1992-93, International Institute for Population Sciences, Mumbai.

- (2000): National Family Health Survey (NFHS-2), India, 1998-93, International Institute for Population Scieces and ORC Macro, Irudaya Rajan, S and P Mohanachandran (2000): 'Infant and Child Mortality Estimates, 1991 Censu by Religion, Occupation and Level of Education', Econo-mic and Political Weekly, Vol XXXV, No51, pp 4541-88, December. Irudaya Rajan, S and K S James (2004): Fertility Estimates by Religion, mimeograph, Centre for Development Studies, Trivandrum, Kerala, Irudaya Rajan, S (2004): 'What Does Census Data on Communities Prove?' Economic Times, September 14.

- (2005): 'Introduction: Emerging Demographic Change in South India' in C Z Guilmoto and S Irudaya Rajan (eds), Fertility Transition in South India, Sag Publication, New Delhi, pp 23-52.

6. Joshi, A P, M D Srinivas and J K Bajaj (2003): Religious Demography of India, Centre for Policy Studies, Chennai.
7. SRS (2004): Sample Registration System Bulletin, Vol 38, No 1, Registrar General, India, April.
8. Zachariah, K C and S Irudaya Rajan (eds) (1997): Kerala's Demographic Transition: Determinants and Consequences, Sage Publications, New Delhi
9. Zachariah, K C, S Irudaya Rajan, P S Sarma, K Navaneetham, P S Gopinathan Nair l;and Us Mishra (1994): Demographic Transition in Kerala in the 1980s, Centre for Develop ment Studies Monograph Series, Thiruvananthapuram. Zachariah, K C, E T Mathew and Irudaya Rajan (2003): Dynamics of Migration in Kerala: Dimensions, Differentials and Consequences, Orient Longman, Hyderabad.

10. International Instituue for Population Sciences (IIPS).
11. National Family Health Survey (NFHS-3), Uttar Pradesh, 2005-06. Mumbai; IIPS; 2007.
12. International Institute for population Sciences (IIPS). District Level
13. Household Survey (DLHS-2), Gorakhpur, 2002-04, Mumbai:IIPS;2002.
14. International Institute for population sciences (IIPS). District Level
15. Household Survey (DLHS-3), Gorakhpur, 2007-08, Mumbai:IIPS;2008
16. District Urban Development Authority, DUDA-Gorakhpur "Lisi of Slums in Gorkahpur City"
17. Office of Municipal Corporation of Gorakhpur (2001) "Ward-wise Population of Gorakhpur"
18. Alagarajan, M (2003): 'An Analysis of Fertility Differentials by Religion in Kerala State: A Test of tnc Interaction Hypothesis', Population Policy and Research Review, 22.J57-74
19. Alagarajan, M and P M Kulkami (1998): 'Fertility Defferentials by Religion in Kerala A Period Parity Progression Retio Analysis', Demography India 27 (i); 123-28
20. Balasubramaian K (1984): "Hindu-Muslim Differentials in Fertility and Population Growth", Artha Vijnana. 26 (3): 189-216
21. Bhatia. P S (1990): 'Population Growth of Various Communities in India-Myth and Reality', Demography India. 19 (1) 121-30
22.1984: "Hindu-Muslim Differential Fertility": How much Religion and 'How much Socio?'. Social Action, 34 (3): 251-73.
23. Das, N and D Pandey (1985): 'Fertility Differentials by Religion in India: An Analysis of 1971 Census Fertility Data Canadian Studies in Population, 12 (2)': 119-35.
24. Day, L H (1984): 'Minority-Group Status and Ferility:' A More Detailed Test of the Hypothesis', Sociological Quarterly, 25 (4); 456-72.
25. Economic and Political Weekly (2004): Special section on 'Cencus 2001 and Religion Data', Economic and political Weekly, 44 (390.
26. Freedman R and P K Whelpton (1961): 'Socio-economic Factors in Religious Differential in Fertility', American Sociological Review, 26 (4): 608-14
27. India, Registrar General (2004): Census of India, First Report on Religion Data, Office of the Registrar General and Census Commissioner, New Delhi.
28.IIPS (1995). National Family Health Survey (MCH and Family Planning), India, 1992-93, International Institute of Population Sciences, Mumbai.
29. IIPS and ORC Macro (2000):'National Family Health Survey (NFHS-2), India, 1998-99, IIPS, Mumbai.
30. Jeffery, R and P Jeffery (2000): 'Religion and Fertility in India', Economic and Political Weekly, 35: 3253-59.
31. Joshi A P M D Srinivas and J K Bajaj (2003): Religious Demography of India, Centre for Policy Studies, Chennai.
32. Khan, M E (1979): Family Planning Among Muslims in India: A Study of the Reproduc tive Behaviour of Muslims in an Urban Setting, Manohar Publications, New Delhi.